संपादन:
राजेश खिंदरी
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

सहसंपादक:
माधव केलकर
दीपक वर्मा

चित्रांकन:
आमोद कारखानिस
उमेश गौर

सहयोग:
जया विवेक
बृजेश सिंह
रामभरोस यादव

शैक्षिक संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-10, मार्च-अप्रैल 1996

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 3518

वार्षिक सदस्यता (6अंक): 35 रुपए
(ड्राफ्ट/मनीऑर्डर एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: 1806 में विदेशी फोटोग्राफर सेमुअल बोर्न द्वारा दिल्ली स्थित कुव्वत-अल-इस्लाम मस्जिद का फोटो। यह इमारत गुलाम वंश से वास्ता रखती है। गुलाम सुल्तान कुतुबुद्दीन अई-बेग द्वारा बनवाई गई मस्जिद। अई-बेग ने ही प्रसिद्ध कुतुबमीनार को बनवाना शुरू किया था।

पिछला आवरण: एक प्रतिरक्षक कोशिका (macrophage); नीचे दिख रहे कैप्सूलनुमा बैक्टीरिया की तरफ बढ़ती हुई। यह कोशिका इस बैक्टीरिया को उठाकर ग्राही टी-कोशिका को दिखाएगी, यह निश्चित करने के लिए कि कहीं यह जीव घुसपैठिया तो नहीं?

इस अंक में विभिन्न किताबों से लिए गए चित्र – साभार: *इंडिया – आर्ट एंड कल्चर*, प्रकाशक: मैपिन पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड; *द बॉडी एट वार*, लेखक: जॉन डायर, प्रकाशक: अनविन हाइमेन लिमिटेड, लंदन; *एनर्जी थ्रू टाइम*, लेखक: जो स्कॉट, प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; *हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड*, प्रकाशक: डोर्लिंग किंडर्सले, लंदन; प्रेक्टिकल फिज़िक्स, लेखक: सॉन्डर्स कॉलेज पब्लिशिंग, अमेरिका; *ऑल काइंड्स ऑफ थिंग्स*, लेखक: आस्टा कास, प्रकाशक: टेलिनन पिरियॉडिका, एस्टोनिया; *इंडियन आर्किटेक्चर (इस्लामिक पीरियड)*, लेखक: पर्सी ब्राउन, प्रकाशक: तारापोरवाला सन्स एंड पब्लिशर्स; *हिस्ट्री ऑफ साइंस*, लेखक: जॉन डेसमन्ड बर्नाल, प्रकाशक: ऑल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क; *इंटरनेशनल वाइल्डलाइफ एन्साइक्लोपीडिया*, प्रकाशक: मार्शल केवेन्डिश कॉरपोरेशन, न्यूयॉर्क।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

इस अंक में

संयुक्त अंक से खतरा लगा

अभी संदर्भ का संयुक्त अंक मिला। पत्रिका के सभी लेख विज्ञान-पाठकों के अनुरूप लगे। 'संकेत और सूत्र' के लिए सुशील जोशी को, 'मंत्र, हवाबाज़ी और धुंध' लेख के लिए अनिता रामपाल को और 'तापमान कैसे नापें' लेख के लिए अजय शर्मा को बधाई। इसके साथ ही अरविन्द गुप्ता, जिनका होशंगाबाद विज्ञान के तंत्र के लिए मधुर सहयोग व अथक प्रयास है, को कोटिशः बधाई। वैसे संदर्भ का संयुक्त अंक देखकर थोड़ा-सा खतरा महसूस हुआ लेकिन फिर भी पत्रिका इस साल नियमित होने की आशा है।

बालकिशन (विज्ञान शिक्षक)
गांव द्वारका, भिवानी, हरियाणा

पुरानी यादें ताज़ा हुईं

संदर्भ का अंक 8-9 पढ़ा। 'यूं बनी एक कहानी' ने तो मुझे चार साल पुरानी याद ताज़ा करा दी। तब मैं छोटे बच्चों को पढ़ाती थी। कहानी सुनना-सुनाना मेरा शौक था। उस समय मैं जानबूझकर कहानी भूल जाती थी और उसे आगे बच्चों से बढ़वाती थी। कहानी के विचित्र मोड़ मज़ा ला देते थे।

एक बार अकबर-बीरबल का एक किस्सा 'तुलसी और कांचखुरी' को कहानी बनाकर सुनाया गया तो उस वक्त वहां मौजूद सभी शिक्षक पेट पकड़-पकड़कर हंसे। मुझे तो लगता है कि अगर अकबर भी उस किस्से को सुनते तो बच्चों के साथ मेरा भी सिर कलम करवा देते। बच्चों ने न जाने क्यों अकबर को खलनायक और बीरबल को नायक बनाकर कहानी की दुर्दशा कर डाली।

स्कूल में मेरा कहानी सुनाने का तरीका सभी को पसंद आता था। और आज जब मैंने 'यूं बनी एक कहानी' पढ़ी तो मुझे स्वयं पर गर्व हुआ कि मैं भी थोड़ा ही सही, आपका तरीका अपनाती थी।

एक बात और कहनी है। संदर्भ ने मेरा विज्ञान पढ़ाने का तरीका ही बदल दिया है। मेरा आत्मविश्वास और उत्साह बढ़ा है। मैं अनुवांशिकता, हार्मोन (पादप-जंतु), मोल (एवोगेड्रो संख्या), रक्त परिसंचरण, मानव नेत्र एवं दोष आदि विषयों पर चाहती हूं कि संदर्भ में लेख छपें। नौवीं, दसवीं में पढ़ाने के दौरान ये मुद्दे कुछ समस्या उत्पन्न करते हैं। शुक्ल पक्ष सप्तमी एवं अष्टमी को चंद्रमा की कलाएं किस आधार पर बदलती हैं, कृपया ये भी बताएं।

कविता शर्मा
सरस्वती विद्या मंदिर, हरदा
ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

परजीवी सही नहीं है

संदर्भ का संयुक्त अंक मिला। इस बार कुछ ज़्यादा प्रतीक्षा करनी पड़ी। उम्मीद है आगे सुधार होगा। 'पांच जगत वाली प्रकृति' लेख के पेज नंबर 76 पर कुकुरमुत्ते वाले चित्र के नीचे लिखा है कि "फफूंद परजीवी होते हैं।" यह बात मुझे खटकी। सभी फफूंद परजीवी नहीं होते। और कुकुरमुत्ता तो कतई नहीं। अधिकांशतः ये मृतोपजीवी हैं। कुछ परजीवी और कुछ सहजीवी भी हैं जैसे, लाइकेन के साथ की फफूंद। इन्हें परपोषी (Hetrotrophs) कहा जाता है जिसमें परजीवी, मृतोपजीवी और सहजीवी तीनों आते हैं।

और अंत में भरत पूरे को वनस्पति शास्त्रियों की जमात में शामिल करने के लिए धन्यवाद।

किशोर पवार, वनस्पति विभाग
शा. महाविद्यालय, सेंधवा
ज़िला खरगोन, म. प्र.

(लेखक के परिचय में गलती से उन्हें वनस्पति शास्त्र का प्राध्यापक बताया गया था। वास्तव में लेखक प्राणी शास्त्र के प्राध्यापक हैं। गलती के लिए हमें खेद है। – सम्पादक मंडल)

क्या संदर्भ अंग्रेज़ी में भी . . . .

संदर्भ पत्रिका का अंक देखा और ऐसा लगा कि आपने शिक्षा प्रदान करने का एक अनूठा प्रयास किया है जो अपने आप में एक सराहनीय पग है। मेरी एक जिज्ञासा है कि क्या संदर्भ केवल हिन्दी में है या अंग्रेज़ी में भी प्रकाशित होती है?

जे. बी. खन्ना
सरिता विहार, नई दिल्ली

(संदर्भ अंग्रेजी में प्रकाशित नहीं होती। – सं.)

स्रोत शिक्षक भी लाभांवित

संदर्भ का नया अंक हाथ में है। हम स्रोत शिक्षकों को संदर्भ से सबसे ज़्यादा लाभ है क्योंकि इससे प्रशिक्षण के लिए अच्छी तैयारी हो जाती है। संदर्भ के इस अंक में सुशील भाई का लेख 'संकेत और सूत्र', सुधा हार्डीकर का लेख 'किसमें प्रोटीन, कहां वसा' [illegible] का लेख 'मंत्र, हवाबाज़ी और [illegible]' तथा अजय शर्मा का लेख 'तापमान कैसे नापें' बहुत पसंद आए। साथ ही ये मुझे फौलादी बनाने वाले लगे।

आर. आर. चौधरी
शा. बालक उ. मा. विद्यालय, पचमढ़ी
ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

बच्चों ने चाव से पढ़ा

संदर्भ का अंक 8-9 पढ़ा। वास्तव में यह बेजोड़ पत्रिका है। कॉर्क के बारे में रोचक जानकारी मिली। इस बार इसे हमारे क्लब में आने वाले कई बच्चों ने चाव से पढ़ा।

राकेश मालवीय, (चकमक क्लब),
हिरनखेड़ा, ज़िला होशंगाबाद

गुलर के फूल क्यों नहीं दिखते?

संदर्भ का सातवां अंक (सितम्बर-अक्टूबर 95), लम्बे समय तक बाहर रहकर लौटने पर, अभी-अभी मिला।

मेरा सुझाव है कि 'सवालीराम' के तहत उत्तर एकदम सटीक एवं संक्षिप्त होने चाहिए। अगर विस्तार से उत्तर देना हो तो एकदम प्रामाणिक एवं सही होना चाहिए। मैं यह 'गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते' के उत्तर विशेष के संदर्भ में लिख रहा हूं। इसका उत्तर मात्र होना चाहिए था – गूलर के फूल सामान्य अर्थ में इसलिए दिखाई नहीं देते क्योंकि इसके फूल एक विशेष इनफ्लोरेसेंस *(पुष्पक्रम)* हाईपेन्थोडियम पर लगते हैं, जो एक छोटे-से मुंह वाली लुटिया की तरह बंद-कैपीट्यूल्म *(सूरजमुखी वर्ग के पुष्पक्रम)* जैसा होता है। इस पुष्पक्रम में बंद, इन फूलों को बिना हाईपेन्थोडियम को काटे नहीं देखा जा सकता।

संदर्भ के इस अंक में दिए गए विस्तृत उत्तर में परागण का वर्णन तो सही है ही नहीं लेकिन साथ-ही-साथ कुछ भ्रामक बातों का भी दुर्भाग्यपूर्ण समावेश हो गया है जैसे– "वह फल नहीं बल्कि फूल का ही एक हिस्सा होता है।" *(वास्तव में एक पुष्पक्रम है)*; "सबसे पहले गूलर के एक-दो फूल ले आते हैं।" *(वास्तव में पुष्पक्रम)*; "सिर्फ पुंकेसर या सिर्फ स्त्रीकेसर वाले ढेर सारे फूल एक साथ खिले होते हैं।" *(वास्तव में ये न एक साथ पास-पास होते हैं न एक साथ खिलते हैं)*; "इस छेद में से ही कोई भी कीड़ा वगैरह भोजन की तलाश में" *(कोई भी नहीं, मात्र गर्भवती ब्लास्टोफैगा जिसे कीड़ा नहीं कीट कहना ठीक होगा और ये भोजन की तलाश में नहीं रहता)*; "वह फल नहीं बल्कि पुष्पासन है" *(वास्तव में यह एक फल, एक कम्पोजिट फ्रूट ही है)* आदि।

हाईपेन्थोडियम में पाये जाने वाले पुष्पों के परागण का सही वर्णन स्कीन महोदय की पुस्तक 'बायलॉजी ऑफ फ्लावर' में दिया गया है और अत्यंत रोचक है। इसे मैंने 1953-54 में पढ़ा था और पढ़ाया था। आज मेरे पास न यह पुस्तक है, न नोट्स। याददाश्त के आधार पर एक मोटा वर्णन देना चाहूंगा, शिक्षकों के लाभार्थ।

अंजीर का ही उदाहरण देते हुए, स्कीन ने बताया कि इसमें तीन प्रकार के हाईपेन्थोडियम बनते हैं। एक में सिर्फ ओव्यूल-रहित और नर्म भित्ती वाले अण्डाशय के खोटे स्त्री पुष्प पाए जाते हैं, दूसरे में ओव्यूलयुक्त कठोर भित्ती वाले अण्डाशय के असली स्त्री पुष्प और तीसरे में सिर्फ देर से परिपक्व होने वाले नर पुष्प। गर्भवती ब्लास्टोफैगा मादा (जो एक वास्प – बर्र ततैया वर्ग है) नर्म भित्ती वाले खोटे स्त्री पुष्पों वाले हाईपेन्थोडियम में घुसकर, इन्जेक्शन की सुई जैसे अपने अंग विशेष-ओवीपोज़ीटर से छेदकर, खोटे अण्डाशयों में अण्डे देती है। यहीं पर, विकास प्रक्रिया से इनमें से वयस्क नर-मादा कीट विकसित होते हैं, कोप्यूलेट (समागम) करते हैं और फिर गर्भवती मादाएं अण्डे देने के लिये, नर्म भित्ती के अण्डाशयों वाले खोटे

स्त्री पुष्पों के हाईपेन्थोडियमों की तलाश में, हाईपेन्थोडियम से हाईपेन्थोडियम घूमती-फिरती हैं।

इस समय तक असली स्त्री-पुष्प जिनमें कठोर भित्ती वाले अण्डाशय होते हैं और नर-पुष्प अलग-अलग हाईपेन्थोडियमों में परिपक्व हो जाते हैं। भटकते-भटकते, नर पुष्पों वाले हाईपेन्थोडियमों पर जा पहुंचने वाली मादाओं के शरीर परा ाकणों से पट जाते हैं। ये निराश होकर जब असली स्त्री पुष्पों वाले हाईपेन्थोडियम में जा घुसती हैं तो वहां कठोर भित्तीवाले अण्डाशयों को छेद नहीं पातीं और निराश हो फिर लौट पड़ती हैं। पर इस प्रयत्न के दौरान वे परागण तो संपन्न कर ही देती हैं। अन्ततः ये नर्म भित्ती के खोटे अण्डाशयों वाले हाईपेन्थोडियमों में सफल प्रयत्न कर अपने अण्डे देती हैं, जिनमें से फिर इस कीट की नई पीढ़ी पनपती है।

ब्लास्टोफैगा की नई पीढ़ी बिना अंजीर के नहीं पनप सकती और अंजीर में बीज बिना ब्लास्टोफैगा के नहीं बन सकते। अपने जीवन-चक्र पूर्ण करने के लिये एक कीट और एक वृक्ष के एक-दूसरे पर पूरी तरह निर्भर होने का यह अद्वितीय उदाहरण है।

ए. सी. दत्ता तथा अन्य वानस्पतिकी की पाठ्यपुस्तकों में दिया गया वर्णन (जहां से इस सवाल का उत्तर और चित्र लिये गये हैं) थोड़ा भ्रामक है।

डॉ. एन. मिश्रराज
मयूर विहार, नई दिल्ली

पुनश्च: मैं कोई 38 वर्षों तक वानस्पतिकी विषय पढ़ाने का अद्भुत आनन्द लेता रहा हूं। ओव्यूल, कैपीट्यूल्म, हाईपेन्थोडियम और कम्पोज़िट फ्रूट के हिन्दी पर्याय मेरे पास उपलब्ध नहीं हैं। क्षमा करें।

द्वैमासिक पत्रिका शैक्षिक संदर्भ के स्वामित्व और अन्य तथ्यों के सम्बन्ध में विवरण (फार्म 'बी')

प्रकाशन का स्थान:	भोपाल	राष्ट्रीयता:	भारतीय
प्रकाशन की अवधि:	द्वैमासिक	पता:	'एकलव्य', कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461001
प्रकाशक का नाम:	राजेश खिंदरी	उन व्यक्तियों के: नाम और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामाबित्व है	एकलव्य, कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461 001
राष्ट्रीयता:	भारतीय		
पता:	'एकलव्य', कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461001		
संपादक का नाम:	राजेश खिंदरी		
राष्ट्रीयता:	भारतीय		
पता:	'एकलव्य', कोठी बाज़ार होशंगाबाद, 461001		
मुद्रक का नाम:	राजेश खिंदरी		

मै राजेश खिंदरी यह घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

राजेश खिंदरी
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

एकलव्य के प्रकाशन
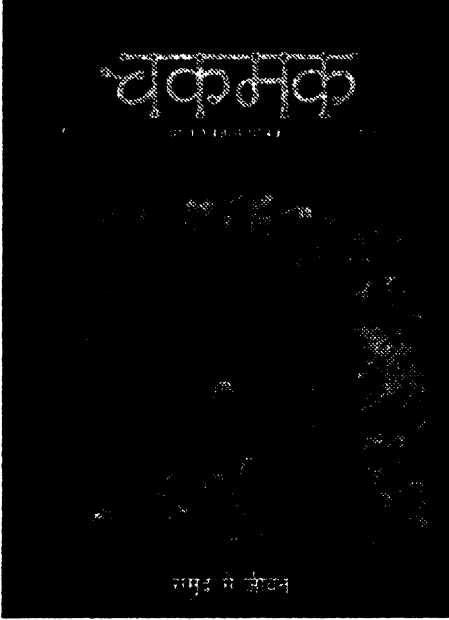
चकमक: बच्चों की बाल विज्ञान पत्रिका; हर महीने प्रकाशित; ताकि बच्चों की रचना प्रक्रिया, कौशल और सोचने के तरीके को बल मिले।

मूल्य: एक अंक 5 रुपए

वार्षिक सदस्यता: 50 रुपए

(पुराने अंकों के सजिल्द संस्करण भी उपलब्ध)

संदर्भ

संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के पहले छह अंकों का सजिल्द संस्करण। इन अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है। इस संस्करण का मूल्य 60 रुपए (डाकखर्च सहित) है।

राशि कृपया डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016

एक प्रयोग की जांच

बुन्सन बर्नर के बीच की छह इंच जगह

● मिलिन्द वाटवे

सालों-साल पहले, जैसा अपने शिक्षक से समझते आए थे, वैसा ही छात्रों को पढ़ाया कि छह इंच की दूरी पर रखे हुए दो जलते हुए बुन्सन बर्नर के बीच या तो जीवाणु होंगे ही नहीं या फिर बहुत ही कम होंगे। लेकिन उस दिन एक छात्र ने मानने से इंकार कर दिया। उसके बाद हमने सोचा कि क्यों न प्रयोग करके देखें। जब प्रयोग किया तो.......।

माइक्रो-बायोलॉजी और बायो-टेक्नॉलॉजी इन दोनों विषयों में एक प्रमुख अवधारणा यह है कि जीवाणु-रहित माहौल में प्रयोग करने चाहिए। चाहे आप पेड़-पौधों या प्राणियों के ऊतकों को बढ़ाने में लगे हों, जीवाणु की कल्चर तैयार कर रहे हों, इंजेक्शन द्वारा शरीर में पहुंचाई जाने वाली दवाईयों पर काम कर रहे हों या कुछ ऐसा ही और – यह लाज़िमी हो जाता है कि इन सबको जीवाणुओं द्वारा दूषित होने से बचाया जाए।

जीवाणु हवा में, किसी भी पदार्थ की सतह पर और शोधकर्ता की त्वचा पर, हर जगह मौजूद होते हैं; और उसके खांसने, छींकने व यहां तक की सांस लेने पर भी वातावरण में निरंतर फैलते रहते हैं। इस वजह से स्थिति पेचीदा बन जाती है। बोतलों, परखनलियों और जिस माध्यम में काम हो रहा है, उन सबको तो जीवाणुहीन बनाया जा सकता है लेकिन कमरे के सम्पूर्ण वातावरण और खुद अपने आप को जीवीणुहीन कैसे बनाएं, शोधकर्ता के लिए एक खासी चुनौती रहती है? फिर भी ऐसे कई तरीके हैं जिन्हें अपनाकर दूषण की संभावना को इस प्रकार के प्रयोगों के लिए स्वीकार्य निम्न स्तर पर बनाए रख सकते हैं।

औद्योगिक एवं शोध इकाइयों में आमतौर पर 'लेमिनर फ्लो' नामक

उपकरण का इस्तेमाल करके, जीवाणुहीन हवा की पर्तों को प्रयोग-करने के इलाके पर से लगातार बहाया जाता है। परन्तु लेमिनर फ्लो उपकरण काफी महंगे होते हैं और ज़्यादातर महाविद्यालयीन प्रयोग शालाएं इसे जुटा पाने में असमर्थ होती हैं।

तो फिर महाविद्यालयीन प्रयोग शालाएं क्या करती हैं? वहां छात्रों से कहा जाता है कि वे दो बुन्सन बर्नर लें और उन्हें लगभग 6 इंच की दूरी पर जलाकर रखें। फिर छात्रों से अपेक्षा की जाती है कि वे इस 6 इंच के क्षेत्र में ही पूरा प्रयोग करें। वैसे यह छोटी-सी जगह थोड़े अभ्यास के बाद काम करने के लिए पर्याप्त रहती है।

तीन साल पहले बी. एस सी. प्रथम वर्ष के छात्रों को मैं यह सब ठीक उसी तरह समझा रहा था, जैसे मैंने पन्द्रह साल पहले अपने शिक्षक से सुना था, "देखो, जब तुम ये बर्नर जलाओगे तो हवा फैलती है और वहां से हटती चली जाती है। अगर तुम परखनली का मुंह इस क्षेत्र में खोलते हो तो बाहरी हवा में स्थित दूषित तत्व परखनली में घुस पाएं इसकी संभावना काफी कम होती है। इस प्रकार तुम अपना काम जीवाणुहीन वातावरण में कर सकते हो।"

लेकिन वो नहीं माना

साल-दर-साल छात्र इस बात को बिना वाद-विवाद के स्वीकार करते रहे थे। लेकिन उस दिन एक लड़का इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं हुआ। हमने हवा के प्रवाहों पर बहस की, लेकिन उस पर भी एकमत नहीं हो पाए। इसलिए
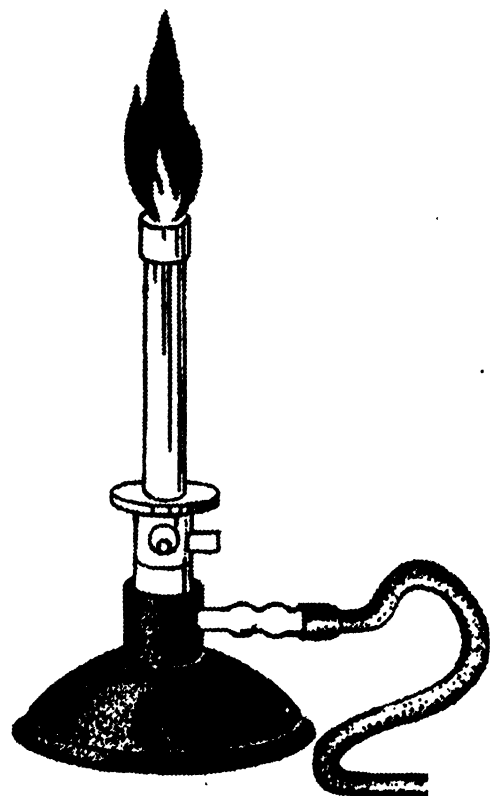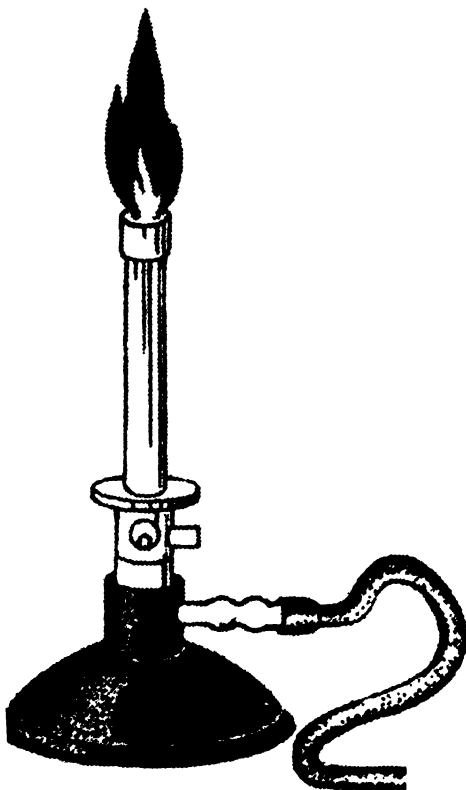
हमने प्रयोग करने जांचना तय किया। मैंने सोचा कि एक सरल तरीका होगा कि हवा में उड़ सकने वाले दृश्य कण उत्पन्न किए जाएं ताकि उनसे हवा के प्रवाहों के बारे में अंदाज़ा लगा सकें। हमने थोड़ा-सा कागज़ जलाया और जले हुए उस बारीक चूरे का उपयोग किया जिस पर कि हवा के हलके-से-हलके बहाव का भी असर पड़ता है। यह प्रयोग कुछ हद तक सफल रहा लेकिन कोई स्पष्ट तस्वीर उभरकर सामने न आई। फिर हमने यह तय किया कि दोनों बर्नर के आसपास के जीवाणुओं के वितरण को जांचेंगे। यह जांचने के लिए सरल तकनीक है कि पोषक माध्यम से बनी 'जेल' (gel) को निश्चित अवधि के लिए विशेष स्थानों पर खुला छोड़ दिया जाए। हवा में तैरते हुए जीवाणु अगर इस जेल के सम्पर्क में आते हैं तो वे इससे चिपक जाते हैं और पोषण प्राप्त होने पर बढ़ने लगते हैं। रात भर में प्रत्येक जीवाणु अपनी कॉलोनी बना लेता है, जिसे देखा और गिना जा सकता है। हालांकि इससे हवा के एक इकाई आयतन में कुल जीवाणुओं की संख्या का पता नहीं चल सकता, लेकिन हवा में अलग-अलग जगह पर जीवाणुओं की संख्या के बीच एक तुलनात्मक अनुपात का अंदाज़ा ज़रूर मिल जाता है।

इस प्रयोग में हमने जीवाणुओं का अनुपात जानने के लिए तश्तरियों को बुन्सन बर्नर की लौ से भिन्न-भिन्न दूरियों और ऊंचाइयों पर समान समय के लिए खुला रखा। अगले दिन मैं यह प्रमाणित करने वाला था कि जो तश्तरियां दोनों बर्नरों के बीच के 6 इंच वाले क्षेत्र में रखी गई थीं उन पर या तो जीवाणु होंगे ही नहीं या थोड़ी संख्या में ही पाए जाएंगे और जैसे-जैसे तश्तरियों की दूरी बर्नर से बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे इन पर जीवाणुओं की संख्या भी बढ़ती जाएगी। लेकिन ऐसा बिल्कुल भी नहीं हुआ। यह देखकर मैं अचंभित रह गया। इस 6 इंच वाले क्षेत्र में रखी गई तश्तरियों पर जीवाणुओं की संख्या उतनी ही थी जितनी कि बर्नर से दो फुट दूर रखी गई तश्तरियों पर। ऐसा क्यों हुआ?

ज़रूर ही कोई गंभीर भूल हो गई होगी। मैंने उन सब कारणों के बारे में गहराई से सोचा जिनकी वजह से प्रयोग विफल हुआ होगा। मैंने प्रयोग करने के लिए दुबारा ध्यानपूर्वक योजना बनाई। तश्तरियों के खुला छोड़े जाने की अवधि को कड़े रूप से मानकीकृत किया। रेन्डमाइज़ेशन द्वारा सभी संभावित पूर्वाग्रहों-पक्षपातों से प्रयोग को मुक्त किया जैसे तश्तरियों की 'धोने वाले पात्र' से दूरी, प्रयोगकर्ता से दूरी आदि।

छात्रों की मदद से हमने तीस जोड़ी प्लेटों को 6 इंची क्षेत्र के बीच और आसपास खुला छोड़ दिया, इस उम्मीद के साथ कि इस बार नतीजे 'सही' मिलेंगे।

अगले दिन हमने तश्तरियों को जांचा और गणना की। यह देखकर मुझे काफी निराशा हुई कि गणनाओं में कोई खास अंतर नहीं आया है। मैंने हर प्रकार की सांख्यिकीय बाजीगरी इन आंकड़ों पर

लागू करने की कोशिश की ताकि मैं कुछ नहीं तो न्यूनतम सांख्यिकीय सार्थकता का प्रदर्शन कर सकूं, और किसी तरह अपने दावे को सिद्ध करके अपनी इज्जत बचाऊं। पर फिर मुझे अचानक लगा कि मैं क्यों अपनी इज्जत बचाने की कोशिश करूं? अब तक यह बात मैंने इसलिए स्वीकार की थी क्योंकि मेरे शिक्षक ने ऐसा बताया था। यह तो आवश्यक नहीं कि यह बात सही ही हो। अब जबकि प्रायोगिक अवलोकनों और मुझे जो पढ़ाया गया उन दोनों में कोई मेल नहीं बैठ पा रहा है तो क्या मुझे अपने शिक्षक पर विश्वास कायम रखना चाहिए या मुझे अपने प्रायोगिक परिणामों पर भरोसा करना चाहिए? विज्ञान के असली भाव को मानते हुए निश्चित रूप से मुझे अपने अवलोकनों पर विश्वास करना चाहिए। मुझे यह स्वीकार कर अपना मन बनाने में कुछ समय लगा कि मैं कक्षा में सब छात्रों के सामने यह घोषित कर पाऊं कि जो पाठ हमने अपने अध्यापकों से सीखा था वह असंदिग्ध रूप से गलत ही था।

तो कहां से आया

इसके बाद मैंने इस प्रायोगिक विधि की उत्पत्ति की गहराई से जांच करने की ठानी। मैंने पाया कि कोई भी पाठ्य-पुस्तक यह सलाह स्पष्ट रूप से नहीं देती कि दो बर्नर के बीच की जगह में ही प्रायोगिक कार्य किया जाए। कोई भी ऐसा प्रामाणिक शोध उपलब्ध नहीं था जिसमें कि तथाकथित '6 इंची जीवाणुहीन क्षेत्र' और आसपास के जीवाणुओं का मात्रात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया हो। और सबसे बड़ी बात यह है कि जीवाणुहीन क्षेत्र की अवधारणा केवल कुछ ही विश्वविद्यालयों तक सीमित है, जहां इसका ऊपर से नीचे की ओर प्रसारण होता रहता है। मैं ऐसा कह रहा हूं क्योंकि मेरे शिक्षक ने यह कहा था, जिसने एक समय अपने अध्यापक से यह सीखा था, लेकिन यह कड़ी पकड़ में नहीं आती कि आखिर इस रूढ़ि की उत्पत्ति हुई कैसे?

मैंने माइक्रो-बायोलॉजी के बहुत सारे शिक्षकों से इस बारे में बातचीत की लेकिन उनकी प्रतिक्रियाएं आश्चर्यजनक लगीं। इनमें सबसे आम जवाब था, "अगर आप कहते हैं तो शायद ऐसा हो सकता है।" (इस बात का असली मतलब लगाया जाए तो वे कह रहे हैं लेकिन पढ़ाना तो हम वही जारी रखेंगे!)

एक अन्य प्रतिक्रिया, "दोनों बर्नरों के बीच वाले क्षेत्र में काम करने से चाहे कोई फायदा न होता हो, पर हम करें भी तो क्या, जब हम लेमिनर फ्लो वाला उपकरण खरीद नहीं सकते।" यह बात कुछ ऐसी हो गई जैसे माचिस से बिजली का बल्ब जलाने की कोशिश करना, यह कहते हुए कि जब बिजली है ही नहीं तो हम क्या करें!

एक शिक्षक का कहना था, "वैसे ही हम काफी बकवास पढ़ाते हैं। क्या फर्क पड़ता है?" काश, एक भी शिक्षक ने यह प्रयोग दुबारा करके स्वयं जांचा होता।

उन सभी छात्रों में से जिन्होंने इस

प्रयोग में हिस्सा लिया था, केवल एक मुट्ठी भर ने अपने प्रायोगिक परिणामों पर वास्तव में विश्वास दिखाया और इसके बचाव में कुछ कहने के लिए तैयार थे, प्रतिबद्ध थे। शेष छात्रों ने अपनी कूटनीतिक रणनीति पकड़ कर जवाब दिया कि 'अगर उनका परीक्षक इस जीवाणुहीन क्षेत्र में विश्वास रखता है तो यह वास्तविकता है। यदि वह इसे नहीं मानता तो ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है '।

विज्ञान बाइबिल नहीं

इस कहानी से व्यापक रूप से लागू होने वाली कई सीख उभरती हैं। यह अनुभव विज्ञान पढ़ाने की हमारी सामान्य शैली को दर्शाता है। हम विज्ञान ऐसे पढ़ाते हैं जैसे कि गीता या बाइबिल या कुरान। विज्ञान में लिखा और पढ़ाया गया हर शब्द अविवादास्पद है। मान लीजिए आपका कोई अवलोकन उस सबके विरुद्ध जाता है, उसी बात को खंडित करता है जिसे आपको साधारणतः पढ़ाना चाहिए; ऐसे में यकीनन वही गलत होगा जो आपने अपनी आंखों से देखा था। पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षक तो सर्वोपरि हैं। जो कुछ भी पाठ्य-पुस्तकों में लिखा है वह सही है और शिक्षक का हर कथन सत्य है, अपरिवर्तनीय है। हमारे छात्रों को इस परम्परा में इतना अच्छा प्रशिक्षण मिलता है कि वे सूक्ष्मदर्शी में झांकने से पहले ही जानते हैं कि उन्हें क्या दिखना चाहिए और वे उसका अवलोकन कर चित्र भी बना डालते हैं चाहे मेरी तरह शरारत पसंद शिक्षक ने लेंस के नीचे कोरी स्लाईड ही क्यों न रखी हो! जैसे-जैसे छात्र एक के बाद एक कक्षाओं की सीढ़ियां चढ़ता जाता है, और ऊंची कक्षाओं में पहुंचता है, उसकी स्वाभाविक प्रवृतियां खत्म होती जाती हैं और वह सोच-समझ रहित अनुयायी बन जाता है।

एक और अनुभव

हाईस्कूल में इससे फर्क अनुभव हो सकता है। केवल ज़रा से प्रोत्साहन से छात्र अपने आप खोज में लग जाते हैं। ईमानदारी से स्वयं अवलोकन करते हैं और स्वतंत्र रूप से अर्थ लगाते हैं। तु के लिए मैं एक स्कूली अनुभव बताता हूं।

किताबों में एक प्रयोग दिया रहता है जिसमें कि हवा में ऑक्सीजन की

चित्र: दिलीप चिंचालकर
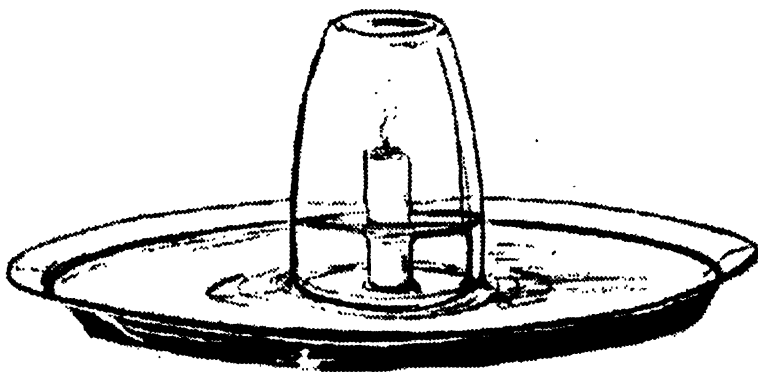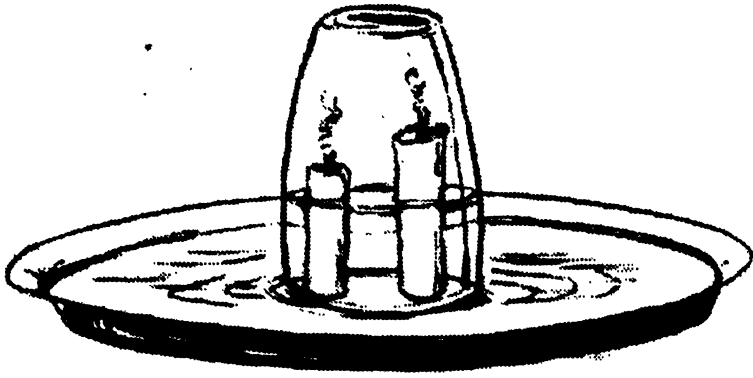
प्रतिशत मात्रा नापी जा सकती है। पुस्तकों के आदेशानुसार एक तश्तरी में थोड़ा पानी लें और एक मोमबत्ती जलाकर उसके बीच में रख दें। फिर कांच का एक गिलास उलटाकर मोमबत्ती पर रख दें। जल्दी ही लौ बुझ जाएगी और पानी गिलास मे चढ़कर 20% जगह घेर लेगा। इससे यह साबित होता है कि हवा में लगभग 20% ऑक्सीजन होती है। मुझे याद है दशकों पुराना यह प्रयोग और उसका चित्र जो मेरी किताब में बना था। कुछ भी नहीं बदला। जब मैं छात्र था तब मैंने बिना सोचे-समझे इस बात को माना था। हमारे प्रयोग केवल किताबों में ही हुआ करते थे। ऐसी कोई परम्परा भी नहीं थी कि प्रयोग स्वयं कर सकते हैं। मुझे शिक्षक के रूप में यह प्रयोग संदेहपूर्ण लगा; जो कार्बन डाईऑक्साइड उत्पन्न होती है उसका क्या होगा, मोमबत्ती के जलने और बुझने से तापमान में जो बदलाव आया उसका क्या होगा, क्या हवा फैलेगी या सिकुड़ेगी नहीं?

छात्रों के एक समूह ने वास्तव में यह प्रयोग किया। प्रयोग इस मायने में सही रहा कि पानी की कुछ मात्रा गिलास में चढ़ती है। परन्तु प्रायोगिक परिणामों में विभिन्नता पाकर मुझे बहुत हैरानी हुई। एक लड़के ने तय किया कि वह एक की बजाए दो मोमबत्तियां जलाएगा। सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दो मोमबत्तियां जलाने पर पानी ज़्यादा ऊंचाई तक चढ़ा। इस पर छात्रों की ओर से स्वाभाविक तार्किक निष्कर्ष था कि जब हम एक के स्थान पर दो मोमबत्तियां जलाते हैं तो हवा में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है!

लेख खत्म करते हुए यह पहेली मैं पाठकों के लिए छोड़ता हूं कि वे खुद प्रयोग करके देखें और अपने निष्कर्ष निकालें।*

मिलिंद वाटवे — पूना के आबासाहेब गरवारे कॉलेज में विज्ञान पढ़ाते हैं।

यह लेख 'इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज़' द्वारा प्रकाशित साइंस मैगज़ीन 'रेज़ोनेन्स' से लिया गया है। मूल लेख अंग्रेज़ी में। अनुवाद — प्रीति जोशी।

*इस प्रयोग के विस्तृत विवरण के लिए देखें संदर्भ अंक-4, पृष्ठ-15 और अंक-5, पृष्ठ-38.

जो लोग दिल्ली सल्तनत का इतिहास पढ़ते-पढ़ाते हैं, वे गुलाम वंश से बखूबी परिचित होंगे। इस दौर में दिल्ली सल्तनत के अधिकांश बड़े अधिकारी व सेनापति गुलाम थे। यहां तक कि सल्तनत के संस्थापक सुल्तान कुतुबुद्दीन अई बेग, इल्तुतमिश और बलबन खुद गुलाम थे। इसलिए इन सुल्तानों को गुलाम वंश के राजा कहते हैं। शायद आपके मन में इस विडम्बना को लेकर कभी-न-कभी कुछ सवाल उठे होंगे।

किसी भी समाज के सबसे निचले दर्ज़े का वर्ग होता है गुलाम वर्ग। इन्हें कोई अधिकार या स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती। इन्हें बाज़ारों में ढोरों की तरह खरीदा-बेचा जाता था। इनका न कोई परिवार होता था न रिश्ते-नातेदार। आपने शायद अमेरिका के अफ्रीकी दासों का वर्णन भी पढ़ा होगा। दास लोग राज्य के उच्चत्तम पदों पर नियुक्त किए जाएं और खुद राजा भी बन जाएं — इतिहास शायद इसीलिए दिलचस्प है कि इसमें ऐसी बातें होती हैं।

जब गुलाम सुल्तान बने

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

कबीलों के योद्धा

दिल्ली सल्तनत की स्थापना मध्य एशिया से आए योद्धाओं ने की थी। दसवीं शताब्दी से मध्य एशिया, ईरान और अफगानिस्तान में कई साहसी योद्धा घूम रहे थे। उन सबके पास थोड़ी बहुत सेना थी और वे सब एक स्थाई राज्य की तलाश में घूम रहे थे — कोई छोटा-मोटा कमज़ोर राज्य दिखा तो उस पर हमला बोलकर अपना आधिपत्य जमा लिया। जो भी ज़रा सफल योद्धा दिखा तो कई छुटभैए योद्धा उसके

साथ हो जाते। ...अब पलड़ा कमज़ोर हुआ तो वे और किसी के साथ हो लेते। यानी उस पूरे इलाके में स्वतंत्र योद्धाओं का जमघट-सा था। सब एक दूसरे की होड़ में, कोई कभी किसी के साथ तो कभी और किसी के साथ....। एक परिदृश्य तो यह था।

और दूसरा परिदृश्य था इन योद्धाओं के परिवारों का। ये सारे योद्धा छोटे-मोटे कबीलों की उपज थे। कबीलों में पारिवारिक रिश्तों पर ज़ोर रहता है और अक्सर एक योद्धा के साथ उसके भाई-भतीजे भी रहते थे। भाई-भतीजे थे तो उनके विशेष अधिकार भी थे। योद्धा अपने अधिकारों व संपत्ति का भोग रिश्तेदारों के साथ मिलकर ही कर सकता था। उदाहरण के लिए गोर राज्य के सुल्तान शम्सुद्दी को अपने राज्य का एक बड़ा हिस्सा अपने भाई की सूबेदारी पर छोड़ना पड़ा। यह भाई उस इलाके पर लगभग स्वतंत्र रूप से शासन करता था। लेकिन उसे भी अपने इलाके में अपने परिवार ...नों को महत्वपूर्ण पद देने पड़े। दरअसल इसी भाई ने 1295 में हिंदुस्तान पर विजय पाई थी।

ज़ाहिर है कि ऐसी स्थिति में कोई योद्धा दूसरे को सर्वे-सर्वा नहीं मानता होगा। राजा या सुलतान कहलाने से ही

कुतुब मीनार (दिल्ली): गुलाम सुल्तान कुतुबुद्दीन अई बेग ने इसका निर्माण शुरू किया था और इल्तुतमिश ने पूरा किया।
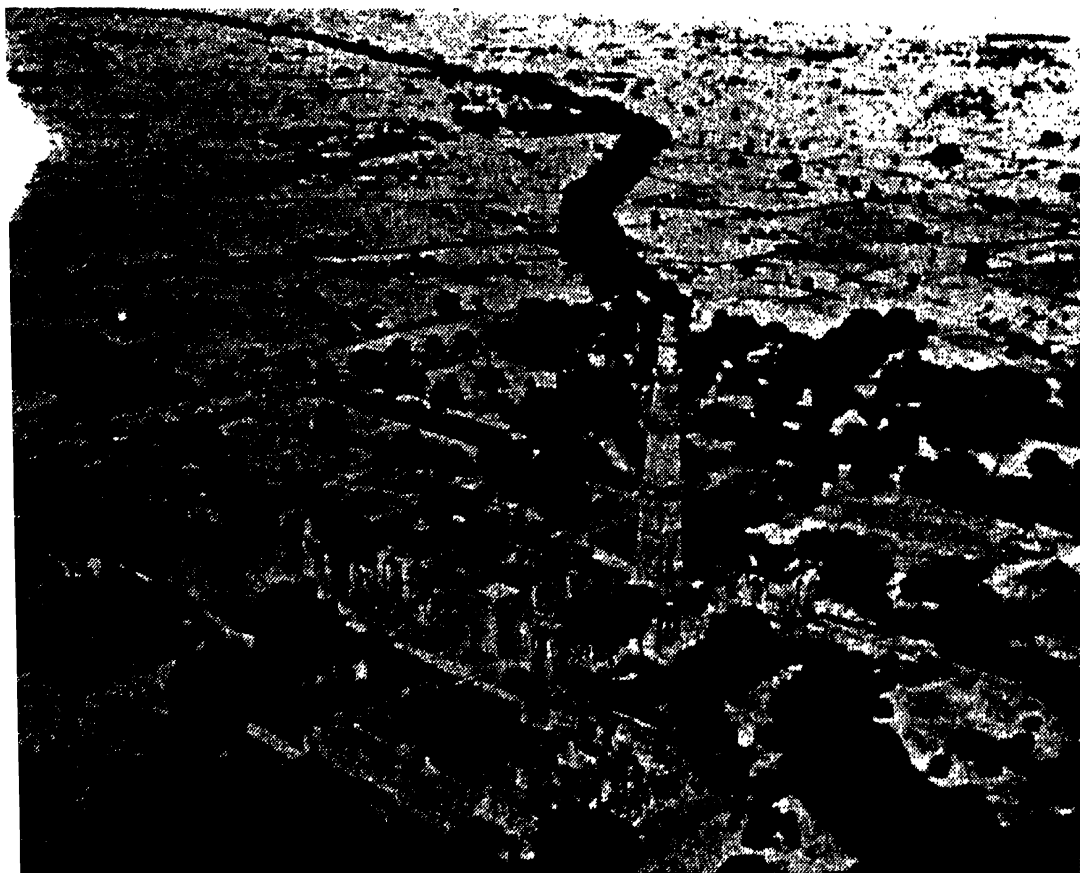
किसी को सत्ता हासिल तो नहीं होती। क्योंकि आज 10-20 छुटभैए योद्धाओं का साथ है तो एक छोटे राज्य पर कब्ज़ा है — कल इनमें से चार-पांच महत्वाकांक्षी नाखुश होकर चल दिए तो सुल्तान की सल्तनत का क्या होगा? कुल मिलाकर मामला काफी अस्थिर था।

जो भी राजा या सर्वे-सर्वा बनने का ख्वाब देखता था उसके सामने दो समस्याएं थीं — एक तो उसके भाई-भतीजे — जो कल तक लंगोटिया यार बनके घूम रहे थे आज वे उसे अपना सर्वे-सर्वा क्यों मानें? दूसरा उसकी सैनिक शक्ति भी दूसरे योद्धाओं पर टिकी हुई होती थी। वे भी इस बात को समझते थे। उनकी भी तो ख्वाहिश थी कि वे भी सर्वे-सर्वा बनें! अब वे और किसी को वह अधिकार क्यों दें?

इसलिए सुल्तान धीरे-धीरे अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए अपने सह योद्धाओं और परिवार जनों से स्वतंत्र होने के प्रयास में थे। ऐसे में मध्य एशिया के योद्धा सुल्तानों ने दास प्रथा का सहारा लिया। उन्होंने काफी बड़ी संख्या में दासों को खरीदा और उन्हें प्रशिक्षित करके अपने काम में लगाया। इस चक्कर में 'दास' का मतलब ही कुछ बदलने लगा।

वफादारी और गुलाम

पत्ते के खेल में गुलाम का नाम बादशाह और बेगम के तुरन्त बाद लिया जाता है। (सोचने की बात है कि अंग्रेज़ी पत्ते में गुलाम नहीं होता बल्कि जैक होता है।) इसी से राजपरिवार और राजसत्ता से गुलामों की निकटता स्पष्ट हो जाती है। व्यक्तिगत सेवा और घरेलू काम के लिए गुलामों को रखना एक प्राचीन परंपरा थी जो मध्यकालीन इस्लामी राज्यों में भी काफी प्रचलित थी। धनी व्यापारी, अधिकारी, सेनापति, विद्वान, संत और सुल्तान, सभी के घरों में गुलाम होते थे; कहीं ज़्यादा तो कहीं कम।

शायद ज़्यादातर गुलाम युद्ध में बंदी बनाकर लाए गए थे। वैसे प्रशिक्षित गुलामों की कीमत काफी अधिक थी। कई व्यापारी नन्हें गुलामों को खरीदकर उन्हें प्रशिक्षित करते थे — धर्म में, युद्ध कला में, प्रशासन में। फिर उन्हें ऊंची कीमतों पर सुल्तानों को या बड़े सेनापतियों को बेच देते थे। अक्सर सुल्तान और सेनापति भी स्वयं नन्हे गुलाम लड़कों को खरीदकर उन्हें अपने परिवार के बीच पालते थे और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करते थे। ऐसे प्रशिक्षित गुलामों की खूब कदर थी और उनके आरामदायक जीवन की व्यवस्था की जाती थी।

यह कुछ अजीब-सी बात लगती है न! उसी समाज में कई अच्छे पढ़े-लिखे और कुशल योद्धा होंगे (जो गुलाम नहीं थे)। उन्हें उतनी ही तनख्वाह देकर काम

पर लगाया जा सकता था, जितना कि गुलामों पर खर्च किया जाता। बावजूद इसके सुल्तान आदि को गुलामों को प्रशिक्षित करके उन्हें काम पर लगाना ज़्यादा पसंद था। इसका कारण खोजना खासा जटिल काम है। इतिहासकारों में भी इस संदर्भ में काफी तीखा विवाद होता रहा है।

बहरहाल मुझे जो कारण समझ में आ रहा है मैं यहां बताऊंगा – आप भी इस पर अपनी राय दे सकते हैं।

मध्यकालीन सामाजिक व राजनैतिक विचारधारा में वफादारी पर काफी ज़ोर था। जिसके पास जितने अधिक वफादार होते वह उतना शक्तिशाली माना जाता था। वफादार वो है जो अच्छे और बुरे दिनों में आपका साथ दे और जो आपके हित को अपने व्यक्तिगत हित के ऊपर माने। अनवरत संघर्ष और राजनैतिक अस्थिरता के काल में वफादारी एक खासी महत्वपूर्ण पूंजी थी।

वफादारी कायम हो इसके लिए या तो सुल्तान कुशल और सफल योद्धा हो या परंपरागत राजपरिवार का हो जिसके प्रति वफादारी की परंपरा रही हो। लेकिन जैसा कि हमने देखा कि 12 वीं सदी में एक तो स्थापित राजघरानों की कमी थी और दूसरे तमाम योद्धाओं को हार और जीत लगभग बराबर मात्रा में हासिल थी। ऐसी परिस्थिति में मध्यकालीन सेनापतियों ने पाया कि गुलामों को अत्यंत वफादार सेवकों के रूप में उभारा जा सकता है। गुलामों के अपने रिश्ते-नाते या स्वतंत्र हैसियत जैसा तो कुछ था नहीं। वे सब कुछ के लिए अपने मालिक पर निर्भर थे। मालिक चाहे तो उन्हें आसमान पर बिठा दे, न चाहे तो झाड़ू लगवाए। एक खलीफा का कहना था:

"जब मैं दरबार में बैठता हूं तो एक गुलाम को बुलाकर अपने बगल में बिठा सकता हूं। इस तरह कि उसके और मेरे घुटने एक दूसरे को रगड़ें। जैसे ही दरबार समाप्त हो जाए तो मैं उसे अपने घोड़े की मालिश करने को कह सकता हूं और उसे तनिक भी बुरा नहीं लगेगा। अगर मैं यही काम और किसी से करने को कहूं तो वह कहता, 'मैं आखिर तुम्हारे पक्षधर का बेटा हूं' या 'तुम्हारा खास साथी हूं।' .... और मैं उसे राजी नहीं करवा पाता।"

कहने का तात्पर्य है कि गुलामों से बिना किसी शर्त के वफादारी की उम्मीद की जा सकती थी जो अन्य लोगों से, चाहें वे कितने ही बुद्धिमान या वीर हों, नहीं की जा सकती।

जब कभी किसी सत्ता के पारंपरिक दावेदारों के अधिकारों को कम करना होता तो आमतौर पर गुलामों का सहारा लिया जाता था। जो काम भाई भतीजे मना कर दें या पुराने साथी इंकार कर दें, उसे गुलाम खुशी से कर देगा। ऐसे में सुल्तान या सेनापति को अपने काम करवाने के लिए पारंपरिक सत्ताधारियों पर निर्भर नहीं होना पड़ता था।

मसलन मुईजुद्दीन गोरी ने जब उत्तर भारत पर विजय पाई तो उसने अपने नए प्रांतों पर शासन करने के लिए और नई जीत हासिल करने के लिए गोर के

पुराने दरबारियों या रिश्तेदारों का उपयोग नहीं किया। उनकी जगह उसने अपने निजी दासों को नियुक्त किया।

गुलाम वफादार क्यों?

इस संदर्भ में एक वाजिब सवाल उठ सकता है कि गुलाम वफादार क्यों होते थे? रोम और अमेरिका के इतिहास से तो स्पष्ट होता है कि दास और मालिकों के बीच परस्पर द्वेष, संदेह और बैर की भावना थी। दास मौका देखकर भाग निकलते थे या एक होकर विद्रोह कर देते थे। ऐसे में दासों में वफादारी के बारे में सोचना ही अजीब लगता है।

मध्यकालीन इस्लामी दास प्रथा और अन्य दास प्रथाओं में एक बुनियादी अंतर था। रोम या अमरीका में दासों को उत्पादन कार्य के लिए खेतों व खदानों में लगाया जाता था। हरेक मालिक के पास हज़ारों दास होते थे, जिनसे मालिक का कोई व्यक्तिगत संबंध था ही नहीं। वह शुद्धतः एक शोषक संबंध मात्र था। ऐसे में गुलामों में मालिकों के प्रति नफरत और विद्रोह की भावना उभरना स्वाभाविक था। भारत में मध्यकाल में खेतों में किसान काम करते थे। उत्पादन कार्यों में दासों का उपयोग बहुत कम था। ज़्यादातर दास मालिकों के घरेलू कामकाज के लिए रखे जाते थे। हालांकि ये खरीदे-बेचे जाते थे लेकिन इनका मालिकों से एक व्यक्तिगत संबंध बनना ज़्यादा स्वाभाविक था। मध्यकालीन धार्मिक परंपराओं में, खासकर इस्लाम में, दास-मालिक के बीच एक गहन रिश्ते की विवेचना की गई है। इसमें बंदा (गुलाम) और मालिक का रिश्ता खुदा और इंसान के रिश्ते के समतुल्य माना जाता था। जिस प्रकार खुदा अपने बंदों से उदार और पैतृक व्यवहार करता है, हालांकि वह सर्वे-सर्वा है, उसी प्रकार मालिकों से भी अपेक्षा थी। ईश्वर के भक्तों की स्थिति की दासों की स्थिति से तुलना की जाती थी। जिन्होंने यह स्वीकारा कि इनका कोई और नहीं है, जिन्होंने अपने मालिक के किसी भी बर्ताव को सहर्ष स्वीकार लिया है, जो अपने तमाम अधिकारों व मांगों को त्याग चुके हों...। इस तरह समाज में दास प्रथा को मान्यता तो मिली, साथ ही दासों के लिए एक मानवीय दर्जा भी सुनिश्चित होता गया।

इसी वैचारिक माहौल में दासों का शासन, प्रशासन और सैनिक कार्यवाहियों में उपयोग बढ़ा। हां, यह ज़रूर है कि अधिकांश दासों की हालात दयनीय ही थी और उनका रुख द्वेषपूर्ण रहा होगा। लेकिन उनमें से कुछ जिन्हें मालिक अपने खास बंदों के रूप में चुन लेता उनका भाग्य कुछ फर्क हो जाता।

इन खास दासों से मालिक अपने बेटों जैसा व्यवहार करता, उनकी परवरिश और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देता, उन्हें समय-समय पर ज़िम्मेदारियां देकर उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाता और क्रमशः उन्हें ओहदे प्रदान करके उनका उत्साह बढ़ाता।

गौर का सुल्तान था मुईजुद्दीन; उसका एक गुलाम था कुतुबुद्दीन अई बेग। अई बेग को शुरू में सुल्तान के दरबार में सेवा करने का मौका दिया गया। फिर उसे एक सैनिक टुकड़ी का नेता बनाया गया (सर-ए-ख्याल)। फिर शाही अस्तबल का निरीक्षक (अमीर-ए-आखुर)। फिर घोड़ों की चराई का निरीक्षक (युद्ध के दौरान घोड़ों को चराना अत्यंत महत्वपूर्ण काम था)। और फिर कुहराम का सूबेदार बनाया गया। मुईजुद्दीन के मरने के बाद वह दिल्ली का पहला सुल्तान बना।

वंश के नहीं, मालिक के गुलाम

जब अई बेग सुल्तान बना तो मुईजुद्दीन के वंश के उत्तराधिकारी गोर पर अपना आधिपत्य खो चुके थे। यह अपने आप में शायद एक विडंबना है कि सुल्तान के होनहार गुलाम उसके द्वारा जीते गए इलाके में राज्य कायम करें और उसके वंशज अपने ही पैतृक राज्य को खोकर दर-दर भटकें।
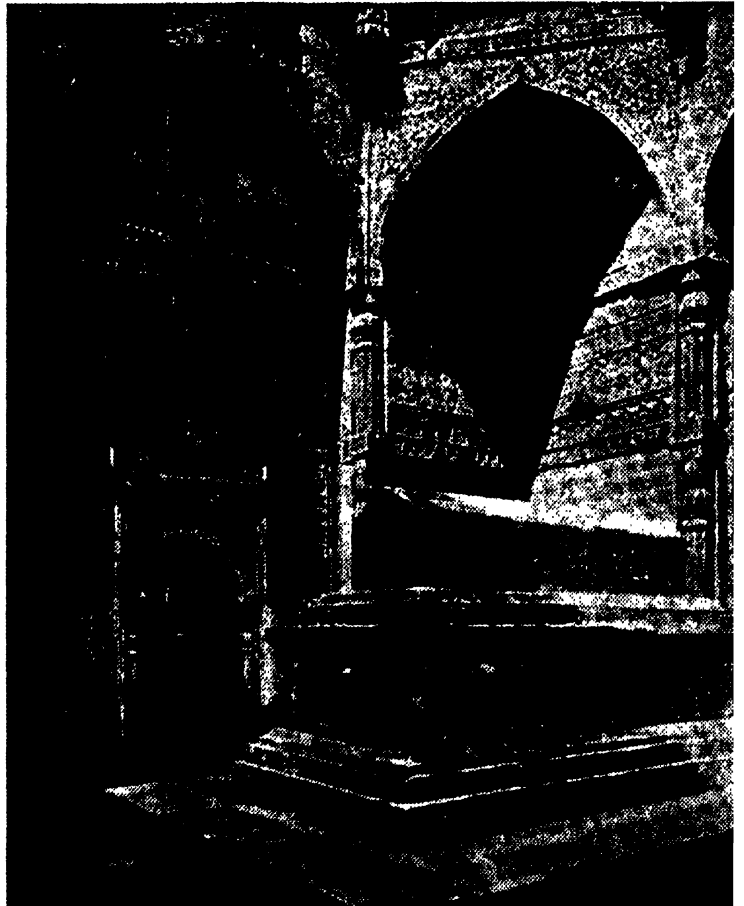
इल्तुतमिश का मकबरा (दिल्ली)

दरअसल गुलामों की वफादारी मालिक के प्रति थी। मालिक न रहा तो उसके उत्तराधिकारी के प्रति उनका कोई ख़ास लगाव नहीं रहता। ऐसी स्थिति में वे खुद सत्ता के दावेदार बन जाते।

दिल्ली सल्तनत के इतिहास में इस बात को बार-बार देखा जा सकता है। हमने अई बेग की बात देखी। उसके बाद उसका गुलाम इल्तुतमिश सुल्तान बना। उसे मुईजुद्दीन के अन्य गुलामों से संघर्ष करना पड़ा। तो उसने भी वही पुराना तरीका अपनाया। उसने अपने खास गुलामों (बंदगान-ए-खास) को बढ़ावा दिया। इन्हें चिहलगानी बंदगान (चालीस गुलाम) कहा जाता है। *

सिर्फ गुलामों का सहारा काफी नहीं

इल्तुतमिश ने अपने गुलामों का एक खास उपयोग किया। उसने उन गुलामों को सेनापति बनाकर अलग-अलग प्रांतों में राज्य करने भेज दिया। वे सुल्तान की तरफ से दूर-दराज़ के इलाकों को काबू में रखते, और वहां से लगान इकट्ठा करते। गौर करने की बात है कि केन्द्र सरकार के ऊंचे पदों पर इल्तुतमिश ने अपने तुर्की गुलामों को नहीं रखा। इन पदों पर उसने ईरान और मध्य एशिया से आए पुराने प्रशासक परिवारों के सदस्यों को नियुक्त किया। ये 'ताजिक़ मालिक' कहलाते थे, कुशल प्रशासक थे और गुलाम नहीं थे। इनके पास मध्य एशिया व पश्चिमी एशिया के बड़े इस्लामी राज्यों में प्रशासन संभालने का तजुर्बा था। इस प्रकार इल्तुतमिश के बड़े अधिकारियों में दो तरह के लोग थे – एक उसके अपने तुर्की गुलाम, जिन्हें उसने सेनापति बनाकर प्रांतों को संभालने भेजा था।

और दूसरे, ताजिक मालिक जो गुलाम नहीं थे और कुशल प्रशासक थे जिन्हें केन्द्र में प्रशासन कार्य के लिए रखा था।

इल्तुतमिश ने इस तरह का एक मिलाजुला शासक वर्ग क्यों बनाया, यह विचार करने की बात है। शायद वह सेनापति व सूबेदार के पदों पर अपने गुलामों को नियुक्त करके सैनिक शक्ति पर अपना सीधा नियंत्रण रख सकता था। अगर गुलामों की जगह स्वतंत्र योद्धा सेनापति या सूबेदार बनाए जाते तो वे शायद सुल्तान से दबकर न रहते। उल्टा सवाल यह भी हो सकता है, उसने केन्द्र के

* आमतौर पर सुल्तान बनने से पहले कुतुबुद्दीन अई बेग और इल्तुतमिश जैसे गुलामों ने अपने मालिक या मालिक के उत्तराधिकारियों से बंदगी मुक्ति हासिल कर ली थी (सिर्फ बल्बन के संदर्भ में स्रोतों में स्पष्ट उल्लेख नहीं है)।
यह जरूरी था क्योंकि इस्लामी कानून के अनुसार गुलाम सुल्तान नहीं बन सकते थे।

ऊंचे पदों में गुलामों को क्यों नहीं रखा?

इसके शायद दो कारण थे। इल्तुतमिश भारत में एक नया साम्राज्य स्थापित कर रहा था। इस काम में उसे वफादारी के अलावा प्रशासन के तजुर्बे और सूझबूझ की भी ज़रूरत थी।

मध्य एशिया के पुराने प्रतिष्ठित प्रशासक परिवार साम्राज्य तंत्र के जानकार थे, उसे चलाने में माहिर थे। इसलिए उन्हें नियुक्त किया गया। एक और कारण था, मध्यकालीन दरबार की संस्कृति। उन दिनों किसी राज दरबार को इस बात से आंका जाता था कि उसमें कितने शिक्षित, सुसंस्कृत व प्रतिष्ठित परिवारों के लोग थे। अगर किसी सुल्तान के दरबार में केवल उसके गुलाम होते तो उसकी कदर कम ही होती। इस मामले में इल्तुतमिश एक तरह से फायदे में ही था। उन दिनों मंगोल कबीले चंगेज़ खान और उसके बेटों के नेतृत्व में मध्य एशिया के इस्लामी राज्यों को ध्वस्त कर रहे थे। वहां से खानदानी परिवार भागकर दिल्ली की ओर पलायन कर रहे थे। दिल्ली तब उन सबके लिए एक मात्र पनाह बना हुआ था।

गुलाम राजा, किसके राजा?

तो 'गुलामों का राजा' बनने से क्या तात्पर्य है? क्या इससे गुलामों की सत्ता कायम हुई? जो गुलाम उच्च अधिकारी या सुल्तान बने वे समाज के किस तबके के हितों की रक्षा कर रहे थे? क्या वे गुलामों के हितों को बढ़ा रहे थे?

यह गौर करने की बात है कि सल्तनत

दिल्ली स्थित बलबन का मकबरा
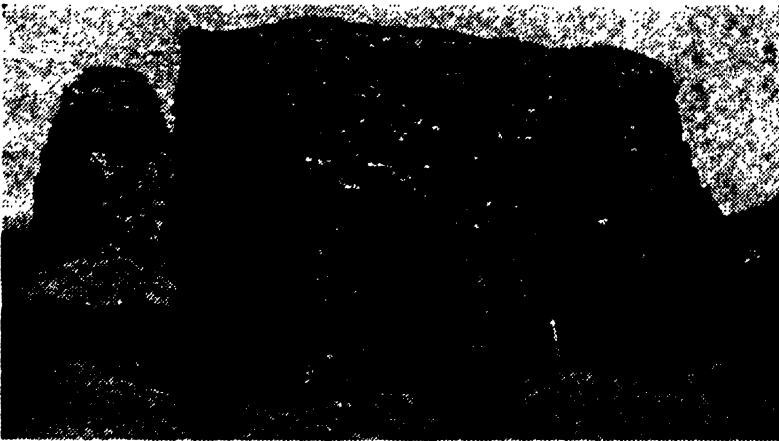
के तमाम उच्च अधिकारी और सुल्तान खुद गुलाम होने के बावजूद अन्य गुलामों की दशा में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। न गुलामी खत्म हुई न ही गुलामों के हित में कोई कदम उठाए गए, उल्टा गुलाम खुद दूसरों को अपने गुलाम बनाने में लगे थे।

ऐसा क्यों हुआ, यह सोचने योग्य प्रश्न है। इससे सत्ता का स्वरूप स्पष्ट होता है। कुतुबुद्दीन अई बेग या इल्तुतमिश या बलबन सत्ता के एक पूर्व निर्मित ढांचे को सुदृढ़ कर रहे थे। वह ढांचा सेनापतियों व उच्च अधिकारियों की सत्ता कायम करने के लिए बना था। ढांचा सैनिक शक्ति पर आधारित था और इसका मकसद था किसानों व कारीगरों से लगान वसूल करना, समाज की वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखना। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि सत्ता को चलाने वाला गुलाम है कि स्वतंत्र तुर्की है या अफगान, हिन्दू है या मुसलमान, ब्राह्मण है या तथाकथित अस्पृश्य।

गुलाम सुल्तान बने मगर यह गुलामों की सत्ता नहीं थी। सुल्तान या सेनापति की सामाजिक पृष्ठभूमि इसके लिए कोई महत्व नहीं रखती थी। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में यह बात काफी दिलचस्प तरीके से स्पष्ट होती है। मोहम्मद तुगलक जब सुल्तान बना उसने इसी सत्ता को सुदृढ़ बनाने के लिए ऊंचे पदों में तमाम निम्न वर्ग के लोगों को नियुक्त किया। बरनी इस बात से आश्चर्य चकित था, "उसने... एक कमीने गायक के पुत्र को... उन्नति प्रदान की। उसने अजीज खम्मार (शराब बनाने वाला), फिरोज़ हज्जाम, मनका तब्बा (बावर्ची), लद्दा माली... बच्चा जुलाहे को ऊंचे पद दिए। पीरा माली जो हिन्दुस्तान के कमीनों तथा पतितों में सबसे अधिक कमीना एवं पतित था को दीवाने विजारत प्रदान की, किरान (शायद अस्पृश्य) को अवध दिया।"

यह वाकई एक विचित्र स्थिति थी। समाज के निम्नतम तबके के लोग उच्चतम पदों पर आसीन थे। यह इसीलिए संभव हुआ क्योंकि इससे राजनैतिक ढांचे को कोई खतरा नहीं था, बल्कि उससे फायदा ही था।

इसके विपरीत विश्व इतिहास में ऐसी मिसालें मौजूद हैं जिनमें गुलामों ने सत्ता कायम की और उसका उपयोग गुलामी को खत्म करने के लिए किया। रोम के साम्राज्य के इतिहास में स्पार्टकस विद्रोह का खासा महत्व है। स्पार्टकस जो एक गुलाम था, ने रोमन साम्राज्य के विरोध में एक सैनिक सत्ता बनाई जिसका उद्देश्य रोमन साम्राज्य को खत्म करना और तमाम गुलामों को मुक्त करना था। उसके बारे में फिर कभी।

सी. एन. सुब्रह्मण्यम — एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम में कार्यरत।

एक प्रयोग

कितनी ऑक्सीजन हवा में

शशि सक्सेना, प्रमोद उपाध्याय

हम सभी जानते हैं कि वायुमंडलीय 'हवा' वास्तव में कई गैसों का मिश्रण होती है। हवा में सबसे अधिक मात्रा होती है नाइट्रोजन गैस की (लगभग 78%), उसके बाद नंबर आता है ऑक्सीजन का (लगभग 21%)। शेष बचे भाग में अन्य गैसें होती हैं।

ऑक्सीजन के महत्व से तो हम सब परिचित हैं ही। प्रस्तुत है एक आसान-सा प्रयोग जिससे हम हवा में ऑक्सीजन की मात्रा पता कर सकते हैं।

यह प्रयोग मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड और ऑक्सीजन की परस्पर क्रिया पर आधारित है। अगर हम एक ऐसे बंद बर्तन में हवा का एक निश्चित आयतन लें, जिसका ढक्कन आराम से नीचे-ऊपर हो सकता हो, और इस बंद बर्तन में मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड डाल दें, तो मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड हवा में उपस्थित ऑक्सीजन से क्रिया कर लेगा, जबकि अन्य गैसें वैसी ही रह जाएंगी। इससे बर्तन के अंदर का दबाव कम हो जाएगा और ढक्कन अंदर की ओर खिसक जाएगा। यानी बर्तन के अंदर का आयतन ठीक उतना ही कम हो जाएगा जितनी ऑक्सीजन, मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड से क्रिया में इस्तेमाल हो जाएगी। इसलिए अगर मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड की मात्रा इतनी ज़्यादा हो कि वो आरंभ में बर्तन में मौजूद हवा में उपस्थित समस्त ऑक्सीजन से क्रिया कर ले तो इस प्रयोग में जितना आयतन कम होगा, वो हमें हवा के लिए गए आयतन में ऑक्सीजन की मात्रा बता देगा। इससे हवा में ऑक्सीजन का प्रतिशत निकाला जा सकता है।

प्रयोग के लिए ज़रूरी समान

- एक 10 मि.ली. की इंजेक्शन सिरिंज
- सिरिंज में लगने वाली सुई
- 5 ग्राम सोडियम हाइड्रॉक्साइड
- 10 ग्राम मैंगनीज़ सल्फेट
- एम-सील या एरलडाइट
- प्लास
- बीकर

सिरिंज का ढक्कन बनाना

इसके लिए सिरिंज की सुई इस्तेमाल होगी। सिरिंज पर लगने वाली सुई में से धातु की सुई को प्लास द्वारा घुमाते हुए खींचकर अलग कर लें।

अब प्लास्टिक वाले हिस्से में, सुई निकालने के बाद बने छेद को एम-सील या एरलडाइट से बंद कर दें। यह बन गया सीरिंज का ढक्कन।

सिरिंज की जांच: यह पक्का कर लें कि सिरिंज का पिस्टन एकदम आसानी से चल रहा है या नहीं? पिस्टन और नली के बीच धूल के कण आ जाने से यह सरलता से नहीं चलेगा। इससे बचने के लिए सिरिंज को धोकर सुखा लें।

मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड का लेप बनाना: इसके लिए हमें दो घोलों की ज़रूरत होगी।

पहला घोल: लगभग 5 ग्राम मैंगनीज़ सल्फेट को 10 मि. ली. पानी में घोल लें।

दूसरा घोल: लगभग 10 ग्राम सोडियम हाइड्रॉक्साइड को 10 मि. ली. पानी में घोल लें।

चित्र: ओम प्रकाश
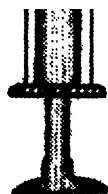
एक बीकर में पहले और दूसरे घोल पांच-पांच मि. ली. लेकर मिलाएं। तुरंत ही सफेद मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड बन जाएगा।

प्रयोग

मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड बनाने के बाद का हिस्सा थोड़ी फुर्ती से करना पड़ेगा क्योंकि मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड तुरंत हवा में उपस्थित ऑक्सीजन से क्रिया करके काले रंग के मैंगनीज़ ऑक्साइड (Mn_2O_3 और MnO_2) में बदलने लगता है।

सबसे पहले सिरिंज का पिस्टन एकदम नीचे कर लें। फिर सिरिंज में दो मि.ली. मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड भर लें। इसके बाद सिरिंज को मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड वाले बीकर में से बाहर निकालकर उसका पिस्टन और ऊपर खींचे, और 10 के निशान तक ले आएं। अब सिरिंज में आठ मि. ली. हवा है। इसके बाद जल्दी से सिरिंज का खुला सिरा,

पहले तैयार किए गए प्लास्टिक के ढक्कन से कसकर बंद कर लें।

सिरिंज के पिस्टन व नली को पकड़कर सिरिंज को अच्छी तरह से हिलाएं। हिलाते समय ध्यान रहे कि सिरिंज की टोपी ढीली न हो जाए, और पिस्टन व नली अलग-अलग न हो जाएं। अब सिरिंज को पिस्टन से पकड़-कर खड़ा करके रखें। मैंगनीज़ हाइड्रॉक्साइड जैसे-जैसे ऑक्सीजन से क्रिया करेगा, सिरिंज की नली नीचे आती जाएगी। यह क्रिया लगभग पांच मिनट में पूरी हो जाएगी। 5 मिनट बाद सिरिंज के अंदर की हवा का आयतन नोट करें। मान लीजिए यह आयतन 'क' मि. ली. आता है।

तब '8 मि. ली. – क मि. ली.' यानी आयतन में कमी, आठ मि. ली. हवा में ऑक्सीजन की मात्रा के अनुपात में होगी। और इस तरह हमें हवा में ऑक्सीजन के प्रतिशत का पता चल जाएगा।

10 मि. ली.

8 मि. ली. हवा में ऑक्सीजन = (8 – क) मि. ली.

100 .... = $\frac{(8 - क)}{8} \times 100$

हवा में ऑक्सीजन ..... = ख %

शशि सक्सेना – दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज में रसायन शास्त्र पढ़ाती हैं।

प्रमोद उपाध्याय – नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्युनोलॉजी, दिल्ली में शोध कर रहे हैं।

सवालीराम ने पूछा सवाल

सवाल: घोड़े सोते वक्त भी अपने पैरों पर नहीं बैठते और अपनी पूरी ज़िन्दगी खड़े-खड़े बिताते हैं। ऐसा क्यों?

नितिन वैध
3164/टाइप-3, ऑर्डिनेंस फैक्ट्री
इटारसी, ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

शायद इस सवाल के बारे में आपने कभी सोचा हो। कृपया अपने जवाब हमें लिख भेजिए। हमारा पता है: संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र., पिन - 461001

कैसे करता है प्रतिरक्षा तंत्र भेद कि फलां जीव हमारे फायदे का है या नुकसान का? विभिन्न परिस्थितियों में उसके काम करने के तरीकों पर विस्तृत जानकारी।

प्रतिरक्षा तंत्र बनाम सुरक्षा प्रणाली

● विनीता बाळ, सत्यजित रथ

भावानुवादः अमित मिश्र

प्रतिरक्षा तंत्र शरीर को रोगों से बचाए रखने का उत्तरदायित्व निभाता है। अगर यह तथ्य हम मानकर चलें, तो इस तंत्र के कुछ गुण बेहतर तरीके से समझना संभव होगा। तीन प्रमुख गुणों की चर्चा 'संदर्भ' के एक पिछले अंक में हो चुकी है (अंक 5, मई-जून 1995)। यह गुण हैं;

1. **विवेकः** अर्थात 'स्वयं', 'अन्य' और 'अन्यान्य' स्रोत से उपजे परमाण्विक आकारों में भेद ज्ञात करने की क्षमता;
2. **स्मरण शक्तिः** अथवा एक बार किसी परमाण्विक आकार को पहचान लेने पर उसे याद रखने की क्षमता;
3. **कार्य-विभाजनः** जिसके द्वारा इस तंत्र में समाविष्ट भिन्न-भिन्न प्रकार की कोशिकाएं, विभिन्न परिस्थितियों का मिल-जुल कर सामना करती हैं।

इनके अलावा कुछ और गुण हैं जो कि प्रतिरक्षा तंत्र को शरीर के अन्य तंत्रों से अलग अस्मिता प्रदान करते हैं। जैसे कि इस तंत्र की कोशिकाएं पूरे शरीर में व्याप्त हैं। किसी एक हिस्से में सीमित नहीं। दूसरी विशेषता है कि यह तंत्र आदर्श स्थिति में निष्क्रिय रहता है — जब तक कोई इसे छेड़े नहीं, तब तक इसकी सारी गतिविधियां मंद रहती हैं। इसके विपरीत, शरीर के अन्य ऊतक आमतौर पर सक्रिय रहते हैं और किसी बाहरी तत्व के अतिक्रमण के कारण उनकी गतिविधियां ठप्प होने लगती हैं। तीसरा गुण इसकी कोशिकाओं के एक वर्ग विशेष

(लिम्फोसाइट या श्वेत रक्त कोशिकाएं) द्वारा विरासत में प्राप्त डी.एन.ए. में रद्दो-बदल करने की क्षमता में नज़र आता है। अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए यह उलट-फेर एक आवश्यक प्रक्रिया है।

यह गुण प्रतिरक्षा तंत्र के प्रमुख उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए आवश्यक है। यह मानते हुए कि इस तंत्र की ज़िम्मेदारी यह है कि वह शरीर को अतिक्रमण से बचाए, चलिए यह देखते हैं कि यह गुण किस प्रकार की ज़िम्मेदारी की अदायगी में मददगार होते हैं।

बहु-कोशिकीय जीव अपनी कोशिकाओं के बीच काम का बंटवारा किए बिना गुज़ारा नहीं कर सकते हैं। इस कार्य विभाजन के फलस्वरूप हर कोशिका अपनी जीविका चलाने के काबिल नहीं बचती। कुछ खास काम अगर किसी कोशिका से कराना हो, तो उसकी रोज़मर्रा की ज़रूरतें तो पूरी करनी ही होंगी, अन्यथा वह 'रोटी, कपड़ा और मकान' के जुगाड़ में अपना परम कर्त्तव्य ताक पर रख देगी। इस वजह से बहु-कोशिकीय जीव एक ऐसे 'आंतरिक पर्यावरण' का सृजन करते हैं जहां आबो-हवा खुशगवार हो और खुराक की इफरात हो। यानी सभी कोशिकाओं को जीवन-यापन के लिए आवश्यक सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हों। अब ऐसे आलीशान 'महल' को देखकर बाहर विचरने वाले सूक्ष्मजीवी जन्तुओं को लालच तो आएगा ही! एक बार इस महल में घुस जाएं, तो रोज़-रोज़ की ज़रूरतें पूरी होती रहेंगी। ऐसे घुसपैठियों से बचाव करने का कोई उपाय बहु-कोशिकीय जीवन के लिए लाज़िमी है। और चूंकि घुसपैठियों का आक्रमण कहीं से भी हो सकता है, इसलिए प्रतिरक्षा तंत्र की कोशिकाओं का सारे शरीर में व्याप्त होना कोई ताज्जुब की बात नहीं है।

अगर ऐसे घुसपैठियों का डर ही न होता, तो प्रतिरक्षा तंत्र को कोई काम ही न होता। यही बात इस तंत्र की 'शांत' प्रवृत्ति को उजागर करती है। जब कोई घुसपैठिया न हो, तो इसकी गतिविधियां मंद रहती हैं। केवल किसी ऊंघते हुए संतरी की तरह यह घुसपैठियों की ताक में बैठा रहता है।

घुसपैठियों को पहचानना शांति बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। पहचानने की क्रिया का सबसे आसान तरीका है, कि प्रतिरक्षक कोशिकाएं एक ऐसा 'ग्राही' (receptor) इस्तेमाल करें जो कि घुसपैठियों को पहचान कर कोशिका को यथोचित कार्यवाही करने की सूचना दे दे। परन्तु यह तभी संभव है जब विभिन्न प्रजातियों के और भिन्न-भिन्न प्रकार के घुसपैठिए अपने 'माथे' पर एक-सा कलंक लगाकर आएं। अब चाहे मानव समाज हो या जीव जगत, किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता कि वह चोर है। समस्या अब यह बन जाती है कि जितने प्रकार के घुसपैठिए हों, उतने प्रकार के ग्राही उत्पन्न करो। यह भी बड़ा मुश्किल काम है।

प्रतिरक्षक कोशिकाओं पर आकर पहचानने वाले ग्राही 'क्लोन' के स्तर पर समान अथवा भिन्न हो सकते हैं।

क्लोन के स्तर पर समानता और विविधता को समझ लेना आवश्यक है। क्लोन एक ऐसा समूह होता है जिसमें सम्मिलित सभी कोशिकाएं एक ही जननी के समसूत्री विभाजन से उत्पन्न हुई हों। यह कोशिकाएं एक दूसरे से हू-ब-हू मिलती-जुलती हैं। उनकी सतह पर सभी आकार भी समान होते हैं। यह तो हुई क्लोन स्तरीय समानता। इस स्तर पर विविधता उस हालत में देखने को मिलती है जब एक ही जननी से उत्पन्न कोशिकाएं और सब मामलों में एक दूसरे के एकदम समान होते हुए भी अपनी सतह पर एक अनूठा ग्राही रखती हों, जो कि अपनी जननी से भी फर्क हो। यह जानते हुए कि कोशिका के द्वारा पैदा किए जाने वाले सभी तत्व उसमें निहित डी.एन.ए. के निर्देशानुसार ही बनते हैं, हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि क्लोन के स्तर पर विविधता प्रदर्शित करने वाली कोशिकाएं विरासत में प्राप्त डी.एन.ए. में फेर-बदल कर सकने की क्षमता रखती हैं। यह फेर-बदल इन कोशिकाओं के परिपक्व होने की प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा है।

समान और भिन्न ग्राही की उपयोगिता को समझने के लिए, चलिए हम मानव समाज का उदाहरण लें। चुनाव की सरगर्मी है। मतदाता सूची में अनाधिकृत व्यक्तियों के शामिल होने का अंदेशा है। ऐसे में व्यवस्था दो तरह के उपाय कर सकती है। सबसे आसान, पर सबसे त्रुटिपूर्ण उपाय यह होगा कि अपने देश के बहुसंख्यक समुदाय के अतिरिक्त सभी को 'विदेशी' या 'घुसपैठिया' करार दिया जाए। अर्थात धर्म के आधार पर राष्ट्रीयता निर्धारित करना। उपजीवी और प्रतिरक्षा तंत्र के संदर्भ में ऐसी स्थिति तब आ सकती है जब प्रतिरक्षा तंत्र समूची बेक्टीरिया कौम को घुसपैठिया करार दे। मानव समाज में ऐसा होने पर समाज को क्या नुकसान है, यह बयान करना ज़रूरी नहीं। शरीर भी इस मूर्खतापूर्ण निश्चय के कारण ठीक वैसे ही नुकसान उठाता है। पाचन तंत्र में रहने वाले बेक्टीरिया शरीर के लिए फायदेमंद ही होते हैं। कई एन्ज़ाइमों और विटामिनों की आपूर्ति यही करते हैं। यहां तक कि स्तनधारी और ऐसे बेक्टीरिया 'विकास' (evolution) के मार्ग पर लाखों वर्षों से हमसफर रहे हैं। अब यदि एक 'समान' ग्राही सभी बेक्टीरिया पर पाए जाने वाले किसी आकार के खिलाफ कार्यवाही शुरू कर दे, तो उन बिचारों की तो शामत आ जाएगी, और शरीर इस फालतू काम में बहुमूल्य ऊर्जा भी नष्ट करेगा।

इस उदाहरण से अन्य-1 और अन्य-2 में विवेक (अन्यान्य विवेक) का महत्व स्पष्ट होता है। यद्यपि पाचन तंत्र निवासी बेक्टीरिया 'अन्य' प्रजाति के होते हैं, प्रतिरक्षक कोशिकाएं उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं करती हैं।

ऐसे 'अन्यान्य विवेक' हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि कम-से-कम प्रतिरक्षक कोशिकाओं का ग्राही 'लचीला' हो। फिर मानव समाज में चुनावी दौर से तुलना की जाए, तो यह मॉडल इस स्थिति के अनुरूप होगा कि प्रशासनिक व्यवस्था हर एक व्यक्ति की जांच पड़ताल
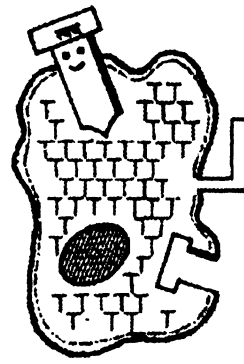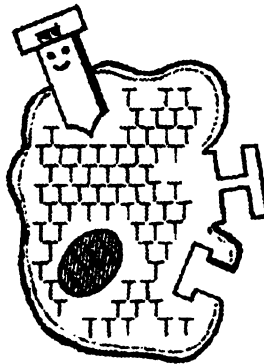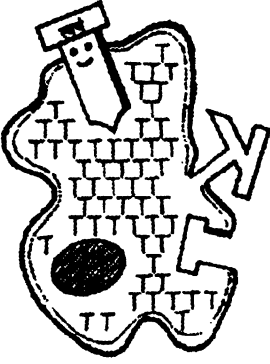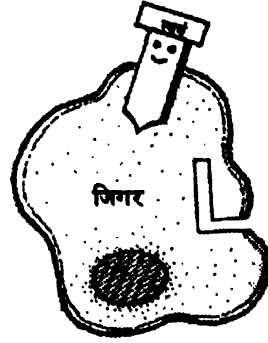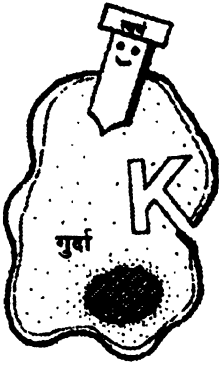
स्वयं की पहचान: चाहे वो गुर्दे की कोशिकाएं हों, दिल की या जिगर की – उन सबकी एक खास पहचान होती है (स्वयं) जिसके आधार पर एक विशेष किस्म की श्वेत रक्त कोशिकाएं (टी-लिम्फोसाइट्स) उन्हें पहचान लेती हैं। खुद श्वेत रक्त कोशिकाओं पर भी वही पहचान मौजूद रहती है जिससे एक श्वेत रक्त कोशिका अन्य श्वेत रक्त कोशिकाओं को भी 'स्वयं' के रूप में पहचान पाती हैं। चित्र में श्वेत रक्त कोशिकाओं पर T-नुमा ग्राही दिखाए गए हैं। जिसमें 'स्वयं फंस जाएगा' और श्वेत रक्त कोशिका को खबर लग जाएगी कि यह 'स्वयं' ही है, गैर नहीं।

कर के ही उसे 'नागरिक' (स्वयं) अथवा 'विदेशी' (अन्य) का दर्जा दे। लचीला ग्राही प्रतिरक्षा कोशिकाओं द्वारा इस प्रकार की जांच पड़ताल करने का साधन बन सकता है। ग्राही को लचीला दो प्रकार से बनाया जा सकता है। या तो उसमें आकारों के अनुरूप अपने आपको बदलने की क्षमता हो, जैसे कि मानव का हाथ। अन्यथा इतने प्रकार के ग्राही बनाए जाएं, जितने प्रकार के परमाण्विक आकार नज़र आते हों, जैसे कि औज़ारों की पेटी जिसमें तरह-तरह के पाने-पेचकश इत्यादि पड़े हों। यह दूसरा तरीका प्रतिरक्षा तंत्र ने अपनाया है। (क्यों अपनाया है, इसके पीछे भी एक ही कहानी है, जो कि आप शायद खुद ही समझ गए होंगे।) क्लोन
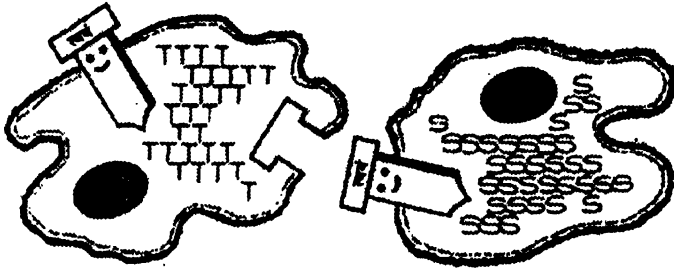
'स्वयं' की पहचान
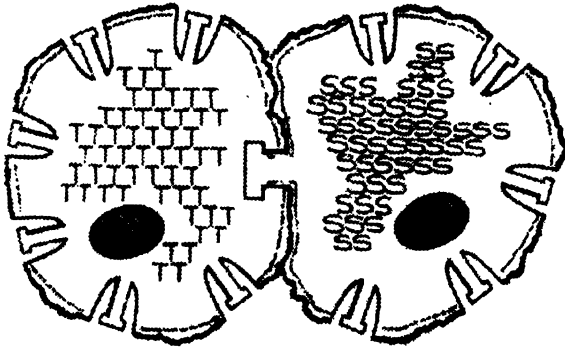
'स्वयं' की पहचान के लिए ग्राही
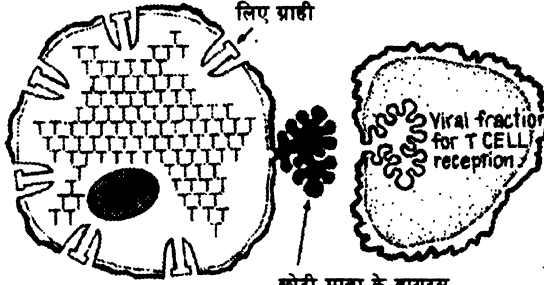
छोटी माता के वायरस की पहचान के लिए ग्राही
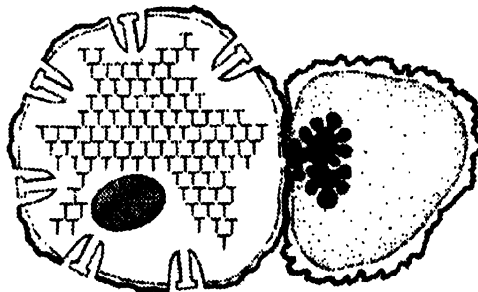
परन्तु बात इतने पर खत्म नहीं होती। कई श्वेत रक्त कण इससे भी आगे बढ़कर स्वयं के विशेष अंगों को पहचानने के भी काबिल होते हैं। उनके पास ऐसे ग्राही होते हैं जो उस अंग विशेष की कोशिकाओं में ग्राह्य हो सकते हैं और उस आधार पर उन्हें पहचान सकते हैं। उदाहरण बतौर चित्र में ऐसा संभव तरीका दर्शाया गया है जिससे पहले किस्म की श्वेत रक्त कोशिका गुर्दे को पहचान सकती है, दूसरी दिल को और तीसरी जिगर को।

अन्य की पहचान: श्वेत रक्त कोशिकाओं पर जैसे स्वयं की पहचान के लिए ग्राही होते हैं वैसे ही 'गैर' का पता लगाने के लिए भी विशेष ग्राही होते हैं। चित्र में एक ऐसी श्वेत रक्त कोशिका दिखाई गई है जिसका ग्राही केवल छोटी-माता के वायरस को पहचानने के लिए बना है।
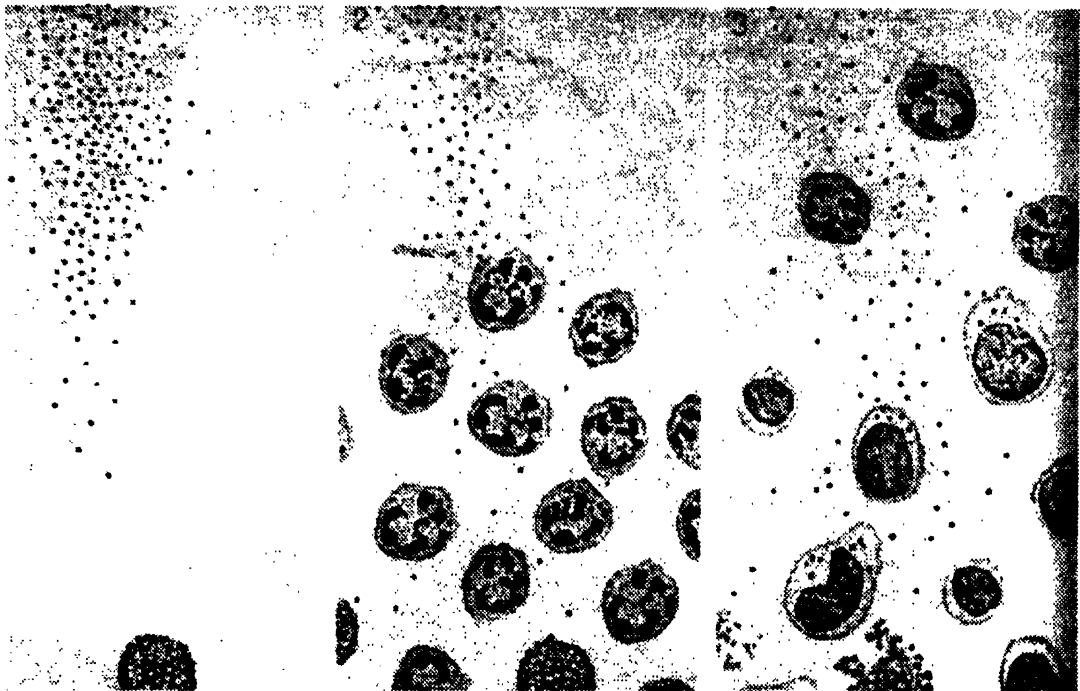
'शत्रु' का संहार: पानीपत का पहला युद्ध: 'शत्रु' को पहचानने पर अचानक प्रतिरक्षा तंत्र हरकत में आ जाता है। शत्रु को पहचानने वाले श्वेत रक्त कण (टी-सेल) रसायनों के माध्यम से अन्य श्वेत रक्त कणों तक संदेश पहुंचा देते हैं कि शत्रु मौजूद है और हमला किया जा सकता है। शत्रु (चित्र में काले-काले बिन्दु) की पहचान के बाद उनसे संपर्क में आने वाली विशेष किस्म की कोशिकाएं (मास्ट सेल, पहले चित्र में नीचे की ओर) खास तरह के रसायनों से तरह-तरह के श्वेत

के स्तर पर विविध ग्राही रखने वाली कोशिकाएं हर आकार को टटोल कर यह सुनिश्चित करती हैं कि क्या वह आकार उनके ग्राही विशेष की पकड़ में आ रहा है? यदि हां, तो उस ग्राही को रखने वाली कोशिका को उचित कार्यवाही करने का संकेत मिल जाता है।

इस तरह अलग-अलग आकार के खिलाफ कार्यवाही की ज़िम्मेदारी को अलग-अलग कोशिकाओं के बीच बांट देने से कई फायदे हासिल होते हैं।

सबसे पहला तो यह कि एक खास तरह के घुसपैठिए के आक्रमण के फलस्वरूप सिर्फ कुछ ही कोशिकाएं सक्रिय होंगी, बाकी सब चुपचाप बैठ कर तमाशा देखेंगी। सक्रिय होने पर, और ज़रूरत पड़ने पर ये कोशिकाएं अपनी सहायता के लिए पर्याप्त मात्रा में अपने जैसा ग्राही रखने वाली पुत्रियों की फौज तैयार कर सकती हैं।

इस तरह सिर्फ ज़रूरत पड़ने पर ही ऊर्जा खर्च होती है। अगर शरीर केवल समान ग्राही वाली कोशिकाओं के भरोसे रहता, तो किसी भी संक्रामक जीव के खिलाफ पूरा प्रतिरक्षा तंत्र एक साथ धावा बोलता, जो कि फिजूलखर्ची की मिसाल होती।
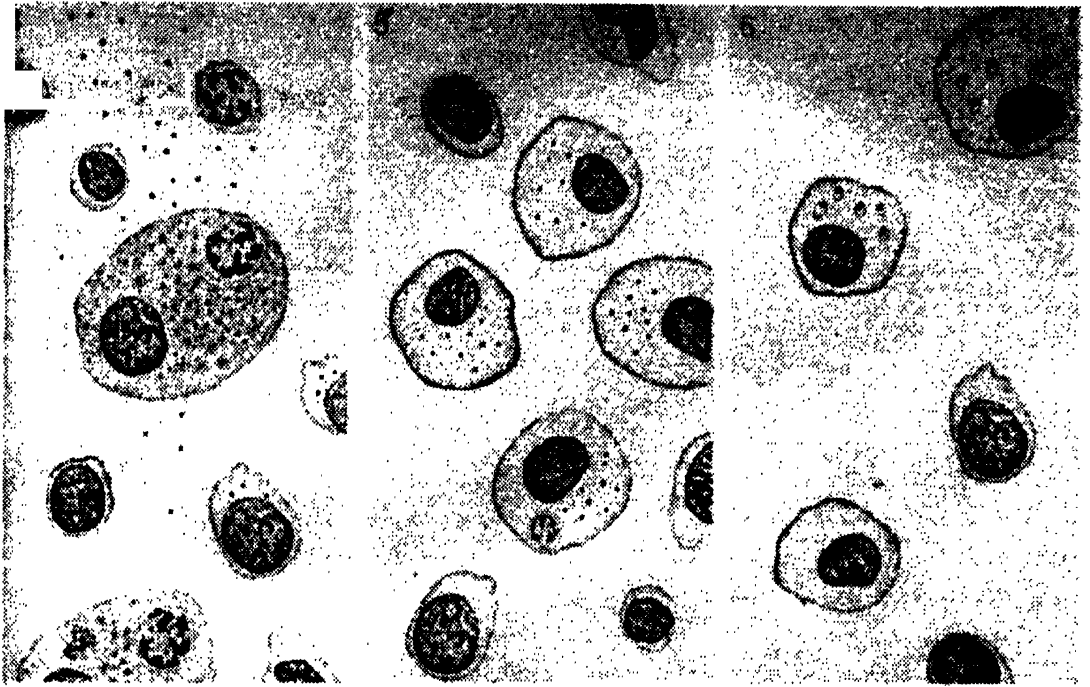
रक्त कणों को आक्रमण की खबर दे देती है और वे सब युद्धक्षेत्र की तरफ कूच कर देते हैं (चित्र-2,3) और शत्रु को खेत करके निगलने लगते हैं। साथ ही वे उस इलाके में फैले लड़ाई में शहीद हुए 'स्वयं' और 'अन्य' के टुकड़ों व रसायनों आदि का भी सफाया कर देते हैं। इस पेटूखोरी से उनमें से कई तो एकदम फूल-से जाते हैं (चित्र-4,5)। ये श्वेत रक्त कोशिकाएं इस सब 'माल' को एन्ज़ाइम के ज़रिए ऐमिनो अम्ल और शर्करा में तोड़कर पचा जाती हैं। परन्तु शत्रु के कुछ टुकड़े कुछ कोशिकाओं में भविष्य के लिए बचाकर रखे जाते हैं (चित्र-6 में गोले में घिरे काले बिंदु)।

इस बात से यह भी ज़ाहिर होता है कि क्लोन के स्तर पर समान कोशिकाओं को हर वक्त चौकन्ना रहना पड़ता है, पर विविध ग्राही वाली कोशिकाएं प्रायः निश्चेष्ट रहती हैं। प्रतिरक्षा तंत्र के दो अन्य मूलभूत गुण, शांत प्रवृत्ति और स्मरण शक्ति भी ग्राहियों में विविधता पर आधारित हैं। 'शांतिप्रिय' स्वभाव का अर्थ है कि कोशिकाएं सतर्क तो रहें, पर लड़ाई पर आमादा तभी हों जब उनके ग्राही का ग्राह्य आक्रमण करे। अगर आक्रमण न हो तो अपने क्रियाकलाप मंद करके पड़ी रहें।

स्मरण शक्ति और ग्राही में भी एक मूलभूत रिश्ता है। समान ग्राही के लिए स्मरण शक्ति कोई मायने नहीं रखती, क्योंकि चाहे अन्य-1 दिखे या अन्य-2, हमला तो सभी कोशिकाओं को करना है। ऐसा हमला स्मरण शक्ति से नहीं, कोशिकाओं की निहित प्रवृत्ति से प्रेरित होगा। ग्राही-वैविध्य ही स्मरण शक्ति को अर्थ प्रदान करता है। एक बार किसी घुसपैठिए के किसी तत्व के आकार को पहचान कर यदि कुछ कोशिकाएं सतर्क स्थिति में आकर बैठ जाएं, तो उस घुसपैठिए से अगली चुनौती का सामना
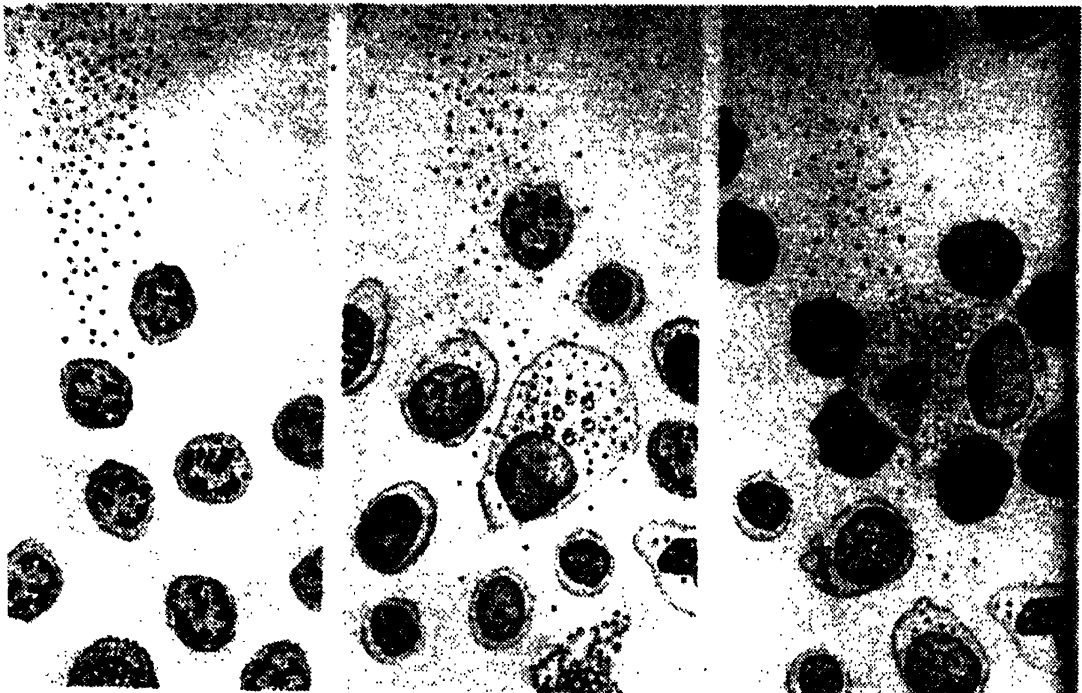
पहली बार आए शत्रु का दूसरा हमला: दूसरी बार हमला होने पर प्रतिरक्षा तंत्र में हरकत बहुत-ही तेज़ी से होती है, क्योंकि दुश्मन उनका पहचाना हुआ था। खूब सारे बड़े वाले श्वेत रक्त कण युद्धक्षेत्र में पहुंच जाते हैं। इनमें से कुछ में उसी शत्रु के पुराने रखे हुए टुकड़े भी होते हैं (चित्र-1,2)।

करने के लिए वे तुरन्त हरकत में आ सकती हैं। नवजात कोशिकाएं, जिन्होंने पहले कभी वह आकार न देखा हो, उचित कार्यवाही करने में थोड़ा समय लगाती हैं। सतर्क, स्मृति धारी कोशिकाएं इस अंतराल को भी कम कर देती हैं।

संक्रामक रोगों के खिलाफ टीकाकरण इसी प्रवृत्ति के आधार पर होता है। यदि हम किसी रोगाणु को पहले से कमज़ोर बना कर प्रतिरक्षक कोशिकाओं को दिखाएं, तो वे उसके खिलाफ कार्यवाही शुरू कर देंगी।

उपयुक्त ग्राही रखने वाली कोशिकाएं अपने क्लोन तैयार करेंगी। कुछ पुत्री कोशिकाओं को यह ज़िम्मेदारी सौंपी जाएगी कि वे मार-पीट करने के बजाए सचेत रहें कि इस मुठभेड़ के बाद भविष्य में फिर कभी वैसा ही आकार तो शरीर में घुसपैठ नहीं कर रहा है? अब अगर उस किस्म का रोगाणु ऐसा करता है, तो यह सचेत कोशिकाएं पिछली बार के बनिस्बत काफी जल्दी कार्यवाही शुरू कर देंगी।

विविध ग्राहियों के फायदे तो बहुत हैं, पर यथार्थ में ऐसे ग्राहियों का उपयोग थोड़ा मुश्किल ज़रूर है। इनको इस्तेमाल करने में जो कठिनाइयां आती हैं, और प्रतिरक्षा तंत्र उनसे कैसे पार पाता है, इसकी चर्चा फिर कभी करेंगे।

(विनीता बाळ, सत्यजित रथ एवं अमित मिश्र – तीनों नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्युनोलॉजी दिल्ली में शोधरत।)

* इसी विषय पर प्रारंभिक जानकारी के लिए संदर्भ के पांचवें अंक में प्रकाशित लेख 'टीका रक्षति रक्षितः' देखें।

क्या बोला और क्या समझा?

वेणु ऐंडले

कितना ज़रूरी होता है शिक्षक के लिए इस बात का ध्यान रखना कि वह कक्षा में क्या और कैसे बोल रहा है? हो सकता है कि किसी और संदर्भ में बात कही और बच्चों ने उसे एक अलग तरह से आत्मसात करके चीज़ों को समझने का एक नज़रिया ही बना लिया।

किसी शिक्षक के लिए कितना ज़रूरी है इसका मूल्यांकन करना कि वह जो निर्देश दे रहा है उसे बच्चे किस तरह आत्मसात कर रहे हैं? इस बात का महत्व समझाने के लिए मार्क ड्रिस्कोल* बिली के हमेशा शुक्रगुज़ार रहेंगे।

1970 की बात है, मार्क कक्षा में बच्चों को पढ़ा रहे थे। इसी कक्षा में था बिली। मार्क ड्रिस्कोल ने बोर्ड पर कुछ संख्याएं लिखीं:

.06, .607, .6, .6707, .067

और छात्रों से कहा कि वे इन्हें क्रम में जमा कर लिखें। बिली ने उन्हें ऐसे जमाया –

.6707, .067, .607, .06, .6

यानी संख्याओं की लंबाई के हिसाब से – सबसे लंबे से सबसे छोटे के क्रम में। मार्क ने पूछा, " बिली इनमें से सबसे छोटी संख्या कौन-सी है?"

बिली ने बिना हिचकिचाए .6707 पर उंगली रख दी।

"ऐसा क्यों?," मार्क ने पूछा।

बिली कुछ सोच में पड़ गया, जैसे कुछ याद करने की कोशिश कर रहा हो। फिर बोला, "मुझे मालूम नहीं। लेकिन इतना याद है कि एक बार एक शिक्षक ने बताया था कि दशमलव में जितना आगे जाते हैं, संख्याएं उतनी छोटी होती जाती हैं।"

मार्क ड्रिस्कोल हैरान थे। बिली के जवाब को सिर्फ याददाश्त की कमज़ोरी समझना उन्हें ठीक नहीं लगा। बिली को अपने शिक्षक की वह बात याद रह गई

यह लेख, अमेरिका से प्रकाशित 'द मेथेमेटिक्स टीचर' में छपे एक लेख पर आधारित है। मार्क ड्रिस्कोल अमेरिका के एक शिक्षा विकास केंद्र में सीनियर प्रोजेक्ट डायरेक्टर हैं।

स्केच: आमोद कारखानिस

जो उन्होंने कभी दशमलव की संकेत पद्धति (Symbol System) को समझाने के लिए अपनी तरफ से एक उपयोगी तरीके के रूप में बच्चों से कही होगी। लेकिन बात का जो अर्थ बिली ने पकड़ा और इस गतिविधि के दौरान दर्शाया वह अपेक्षित अर्थ से अलग था। मार्क ड्रिस्कोल लिखते हैं कि यह बात तब से उनकी पढ़ाने की प्रक्रिया पर हमेशा के लिए छा-सी गई, कि जो भी गणितीय अर्थ का अभिप्राय हो ज़रूरी नहीं बच्चे उससे वही निष्कर्ष निकालें — वही समझ बनाएं।

इस अनुभूति से उन्हें कुछ परेशानी तो ज़रूर हुई पर यह बेहद उत्तेजक भी थी। लेकिन अगला कदम क्या हो?

यदि ऐसा हो रहा है कि शिक्षक की बात के अपेक्षित अर्थ और बच्चों के समझने में समन्वय नहीं है तो शिक्षक को अपने निर्देशों द्वारा यह समन्वयन बनाना होगा। निश्चित ही यह एक चुनौतीपूर्ण काम है।

एक तरीका तो यह हो सकता है कि ऐसी स्थिति बनाई जाए कि बिली जैसे बच्चे यह समझ अन्य बच्चों के साथ काम करते हुए बना लें — बच्चे आपस

में एक-दूसरे से सीखते ही हैं। मार्क ड्रिस्कोल ने भी उस समय तो बिली को इस प्रक्रिया के सहारे छोड़ दिया। पर वे इस संभावना के प्रति भी जागरूक थे कि समझ में कमी के ऐसे और बिन्दु भी हो सकते हैं।

मार्क के लिए यह भी स्पष्ट था कि वे बच्चों की समझ जांचने के लिए ऐसे इत्तफाकों के सहारे ही सब कुछ नहीं छोड़ सकते। बिली ने सहयोग किया, अपनी समझ बता पाया, पर सभी बच्चे ऐसे नहीं मिलेंगे। इसलिए उन्हें यह भी महत्वपूर्ण लगा कि उन्हें अपने निर्देश की नियमित जांच करते हुए पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी हासिल करते रहना होगा।

कहीं भी कक्षा हो, बिल की परिस्थिति में संभवतः कई बच्चे मिलेंगे।

* *

गणित के ही विभिन्न बिन्दुओं के परीक्षण के सिलसिले में बच्चों के बीच काम करते हुए मेरे कुछ अनुभव भी मार्क ड्रिस्कोल जैसे थे। जिनसे यह एहसास हुआ कि शिक्षक और बच्चों में कई बार कितनी दूरी बन जाती है, और परिस्थिति ऐसी बनती चली जाती है कि शिक्षक अपने स्तर पर पढ़ाते चले जाते हैं, और बच्चे अपने स्तर पर अपने ही ढंग से तर्क बना-बना कर समझते रहते हैं। या फिर यह होता है कि शिक्षक के बताए हुए किसी गणितीय नियम को पकड़ कर बच्चे काम करते रहते हैं, उसे पूरी तरह से आत्मसात करे बिना। जिससे कि आगे की संबंधित क्रियाओं में और गलतियां दिखाई देती हैं।

कक्षा तीन के मुकेश से मैंने गिनती लिखने को कहा। वह बोल-बोल के लिखता रहा, "एक, दो, ..., नौ, दस, एक पे
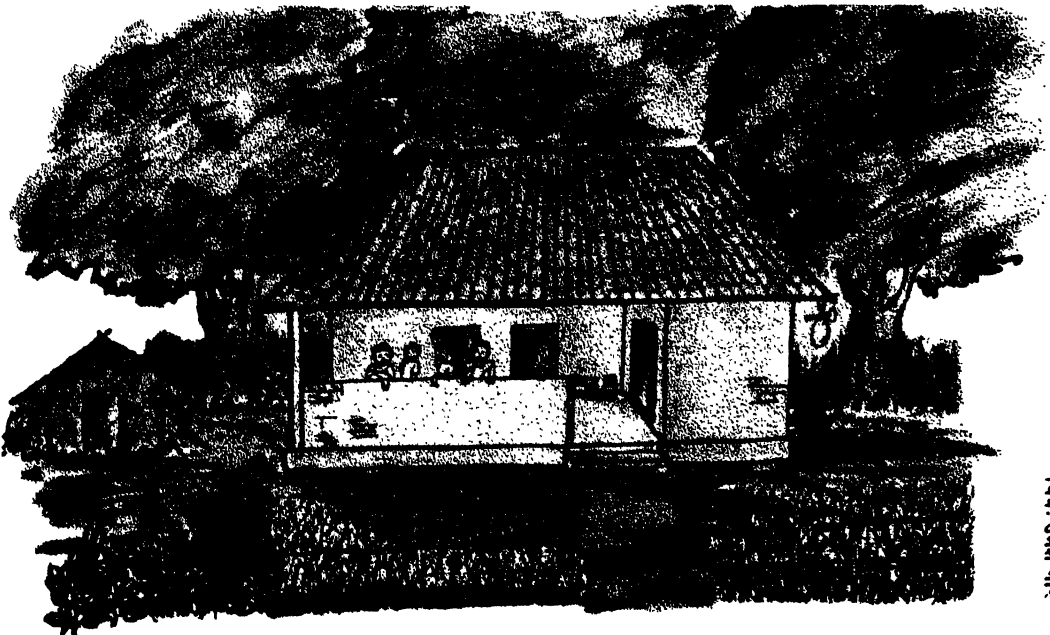
एक ग्यारह, एक पे दो बारह, एक पे तीन तेरह .... दो पे शून्य बीस।''

मैंने उसे वहां रोका और पूछा, ''ये एक पे एक ग्यारह क्यों बोलते हो?''

''मास्साब ने बताया है,'' वह बड़ी सहजता से बोला और आगे लिखने लगा, ''दो पे एक इक्कीस, दो पे दो बाईस...।''

जब वह सौ तक गिनती लिख चुका तो मैंने 14 पर उंगली रख कर पूछा, ''ये क्या लिखा है।''

''चार,'' मुकेश बोला।

मैंने सोचा कि हो सकता है कि मेरी उंगली चौदह में जो चार है उसके ज़्यादा करीब हो। इसलिए मैंने उंगली को थोड़ा बाईं ओर खिसकाया और फिर पूछा, ''ये क्या है?''

''एक,'' मुकेश बोला। मुझे लगा कि शायद उंगली थोड़ा ज़्यादा ही बाएं खिसक गई हो। मैंने फिर उससे पूछा:

''दोनों को मिला दो तो?''

''पांच!''

* *

एक दूसरे परीक्षण में कक्षा पांच के बच्चों को ये संख्याएं दी और कहा इन्हें छोटे से बड़े के क्रम में जमाएं।

74, 12, 21, 6, 55

जवाब में कई बच्चों ने यह लिखा:

74	12	21	6	55
75	13	22	7	56

इसी तरह जब उनसे बड़े से छोटे के क्रम में जमाने को कहा तो कुछ ऐसा लिखा:

74	12	21	6	55
73	11	20	5	54

* *

कुछ-कुछ बिली जैसी समझ का सवाल यहां भी उठता है। लेकिन कक्षा में पढ़ाते हुए बिली और मुकेश जैसे बच्चों का ध्यान कैसे रखा जाए?

मार्क ड्रिस्कोल का मानना है कि यह तभी हो सकता है जब पढ़ाने की प्रक्रिया में ही मूल्यांकन की प्रक्रिया सम्मिलित हो। यानी लगातार इस बात पर गौर किया जाए कि हम जो पढ़ा रहे हैं बच्चे उसे किस तरह से समझ रहे हैं। और इस फीडबैक के आधार पर लगातार अपने निर्देशों, गतिविधियों में सुधार करते रहें। और, इस प्रक्रिया को सघन व व्यवस्थित ढंग से करने की आदत बनाई जाए।

कक्षा में पढ़ाने के बाद एक निश्चित समय पर हम सामूहिक मूल्यांकन के लिए परीक्षण करते हैं। इससे यह जानकारी तो सहज ही मिल जाती है कि कितने बच्चे समझाई गई प्रक्रिया से कुछ पकड़ पाए हैं। कक्षा की सामान्य स्थिति का पता भी चलता है। कौन से बच्चे कहां गलतियां कर रहे हैं, यह भी पता चलता है। पर फिर यह सवाल मन में आता है कि अपनी तरफ से हमने सब-कुछ समझाया था — इसके बावजूद ये गलतियां पाई जा रही हैं। ऐसा क्यों? फिर इससे भी जटिल सवाल कि अब आगे क्या करें? क्या दोबारा वैसे ही पढ़ा देने से बच्चे बात समझ लेंगे? शायद कुछ और जानकारी मिले तो समझाने के तरीके को बदलकर पुनः कोशिश हो सकती है। यहीं परीक्षण का यह दूसरा तरीका उपयोगी सिद्ध हो सकता है जिसका उदाहरण बिली और मार्क ड्रिस्कोल की बातचीत है। एक बच्चे की समझ में कुछ गहराई से घुसना जिससे हमें सीखने के तरीकों के बारे में जानकारी मिले — यह भी शिक्षा में परीक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग है।

संभव है इस ढंग को आपने भी कहीं इस्तेमाल किया होगा। पर क्या इसे एक व्यवस्थित रूप देकर कक्षा में इस्तेमाल करना, खासतौर पर गणित के शिक्षण के लिए (जो कि अपने आप में काफी अमूर्त है) उपयोगी सिद्ध हो सकता है? इस प्रक्रिया को करने के दो मुख्य फायदे हो सकते हैं — एक तो अपने निर्देशों पर गौर करने की हमारी समझ बनेगी और दूसरा, बच्चों की प्रगति का लगातार आकलन करने में मदद मिलेगी।

बहरहाल यह प्रक्रिया सिर्फ इतनी आसान नहीं होगी। आगे बढ़ने पर इसमें और बहुत से कारण, बहुत से सवाल जुड़ेंगे जो पूरी प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण होंगे। शिक्षक की अपनी गणितीय समझ,, उसके मूल्य, बच्चों की जानकारी और उनकी क्षमता के बारे में उसकी धारणाएं भी खासी भूमिका निभाती हैं?

फिलहाल इसे एक सवाल की तरह उठाया था और इसे एक सवाल की तरह ही छोड़ते हैं; ताकि कुछ आप सोचें और कुछ हम!

(वेणु ऐंडले — एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम समूह की सदस्य।)

○ ○ ○

गणक से गणित की समझ

विजय शंकर वर्मा

लोग मानते हैं कि संख्याएं गणित ... सीखने के मामले में बच्चों की प्रगति ठोस से सांकेतिक ... होनी चाहिए यानी शुरूआत सेव, संतरे, टॉफियां जैसी ... ओं से, ... धीरे-धीरे इनके बदले कंकड़, पत्थर आदि का उपयोग औ... इस... क... ढ़ाकर बच्चों को कागज़ पर चित्र बनाकर लिखे संकेतों से मिला... ना सिखाना चाहिए। इनमें से सांकेतिक पक्ष के समय गणक (एबे... का... हो सकता है। क्योंकि इस पर बच्चा सि... हीं ... ल्क... ों को महसूस करता है।

हममें से शायद सब गणक के बारे में जानते होंगे।

याद करने बैठें तो शायद मुश्किल होगी यह सोच पाने में कि वो कैसा होता है या उससे क्या-क्या किया जा सकता है।

लेकिन दुनिया के कई दूसरे देशों में यह खासा प्रचलित है। इसके इस्तेमाल में लोग इतने दक्ष हैं कि तेज़ी से गणनाएं करने के मामले में कई यंत्रों को भी चुनौती दे डालते हैं। बस आगे, इस लेख में हम गणक की ही बात करेंगे और साथ-साथ अपने लिए एक बनाएंगे भी।

एबेकस (गणक) में एक चौकोर ढांचा होता है, जिसमें एक-दूसरे के समानान्तर लगी तारों में मोती फंसे होते हैं। गणनाएं करने में इससे फायदा इसलिए होता है क्योंकि इन मोतियों पर संख्याओं को दर्शाया जा सकता है। अगर इसमें दक्ष हो जाएं तो जोड़, घटा, गुणा, भाग बड़ी आसानी और फुर्ती से किए जा सकते हैं।

अनुमान है कि करीब पांच हज़ार साल पहले बेबिलोन में इसका आविष्कार हुआ। मध्यकाल में यह यूरोप, मध्यपूर्व और एशिया (भारत को छोड़कर) में प्रचलित हो गया। इसको इस्तेमाल करना

इतना आसान और सरल था तथा गणनाओं के नतीजे इतने सही आते थे कि बहुत तेज़ी से यह व्यापक प्रचलन में आ गया। संभव है कि इसके व्यापक प्रचलन का उन इलाकों के लोगों में लिखित संख्याओं के विकास पर प्रभाव पड़ा हो – लिखित प्रस्तुतिकरण के तरीके कमज़ोर रह गए हों। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि शून्य और स्थानीय मान की अवधारणा समेत दशांक पद्धति का विकास भारत में इसीलिए हो सका क्योंकि यहां एबेकस कभी प्रचलित नहीं रहा। दरअसल अरबों द्वारा 17वीं शताब्दी में यूरोप को दशांक पद्धति से परिचित कराने के बाद धीरे-धीरे इस नई पद्धति ने एबेकस को स्थानांतरित कर दिया। क्योंकि नई पद्धति में गणनाओं को लिख कर स्थायी बनाया जा सकता था और साथ ही आंकड़ों का इस्तेमाल सरल भी था। लेकिन मध्यपूर्व, रूस, चीन और जापान में आज भी लोग गणनाएं करने के लिए एबेकस इस्तेमाल करते हैं क्योंकि बचपन से ही इसका प्रशिक्षण मिलने के कारण कुछ लोग इसके इस्तेमाल में इतने दक्ष हो जाते हैं कि तेज़ी के मामले में तो वे गणना करने वाले अन्य यंत्रों को भी चुनौती दे पाते हैं।

चीन में अधिकतर दुकानदार गणनाएं करने के लिए दोनों साधन रखते हैं – एबेकस भी और कैलकुलेटर भी। एबेकस इसलिए ताकि वे खुद तेज़ी से गणनाएं कर लें और कैलकुलेटर इसलिए ताकि बाहर से आने वालों को गणना कर संतुष्ट कर सकें कि वे उनसे सही पैसे ले रहे हैं! लेकिन कुल मिलाकर यह स्थिति बन रही है कि लगातार सस्ते होते जा रहे कैलकुलेटर धीरे-धीरे एबेकस का स्थान लेते जा रहे हैं।

गणित सीखने के कदम

परन्तु एक फर्क दृश्य भी दिख रहा है। एक तरफ तो उन देशों से एबेकस गायब होता जा रहा है जहां पहले कभी बहुत प्रचलित था। वहीं ऑस्ट्रेलिया जैसे
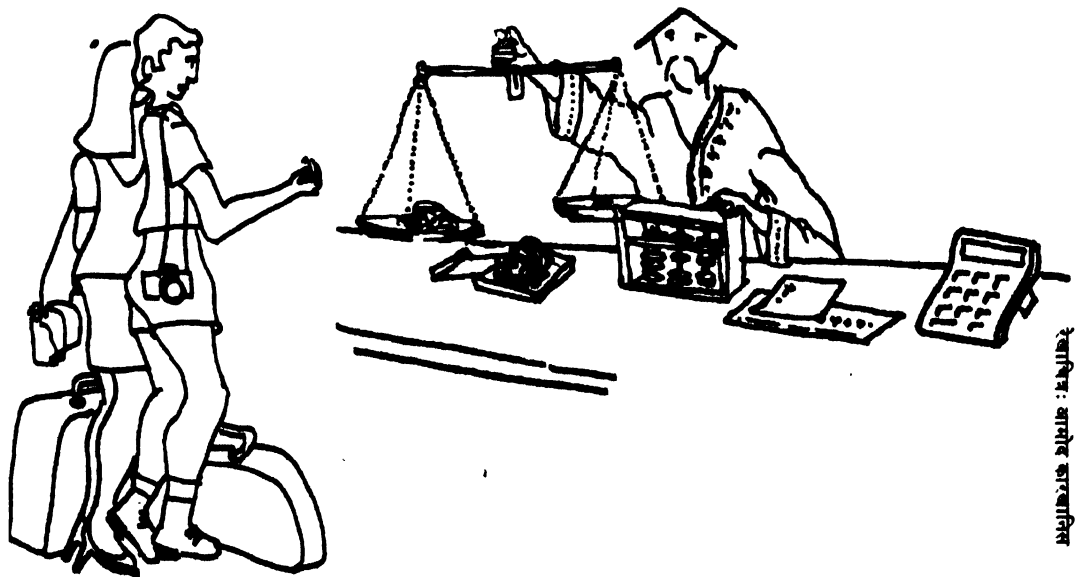
देश में बच्चों को प्रेरित किया जा रहा है कि एबेकस सिखाने वाली विशेष कक्षाओं में जाएं और उसके इस्तेमाल में दक्ष हों। आखिर ऐसा क्यों?

दरअसल कई लोग मानते हैं कि संख्याएं और गणितीय क्रियाएं सीखने के मामले में बच्चों की प्रगति ठोस से सांकेतिक और फिर अमूर्त (abstract) की ओर होनी चाहिए। वैसे ये भी एक अमूर्त वाक्य लगता है। चलिए इसे समझते हैं। जैसे जोड़, घटा आदि क्रियाओं को सीखने के लिए शुरूआत में ठोस वस्तुओं जैसे सेव, संतरे, टॉफियां आदि का इस्तेमाल होना चाहिए। फिर धीरे-धीरे इनके बदले कंकड़, पत्थर, गुटकों को इनके प्रतीकों के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। इसके बाद बच्चों को कागज़ पर चित्र बनाकर लिखे संकेतों से मिलान करना सिखाना चाहिए। इन सभी कदमों के बाद ही बच्चों को वास्तविक रूप में अंकों से परिचित कराना उचित होगा। शायद इन्हीं रास्तों से होकर ही बच्चों में गणितीय सिद्धांतों की समझ का सही विकास हो सकता है और वे उन्हें आत्मसात कर पाते हैं।

यदि कोई सीखने के इन तरीकों पर विश्वास करता है तो एबेकस बच्चे में अंकों से संबंधित क्रियाओं से जुड़ी क्षमता के विकास में काफी मददगार साबित हो सकता है। एबेकस सांकेतिक रूप में अंकों की पहचान का एक ठोस उदाहरण है जो बच्चों में हस्तकौशल विकसित करने में भी सहायक होता है। एक तरह से बच्चा इसमें अंकों को महसूस कर सकता है। तेज़ी से गणनाएं करने की दक्षता बच्चा इसकी सहायता से विकसित कर सकता है। इन सभी कारणों से ऑस्ट्रेलिया

चीनी गणक (एबेकस)
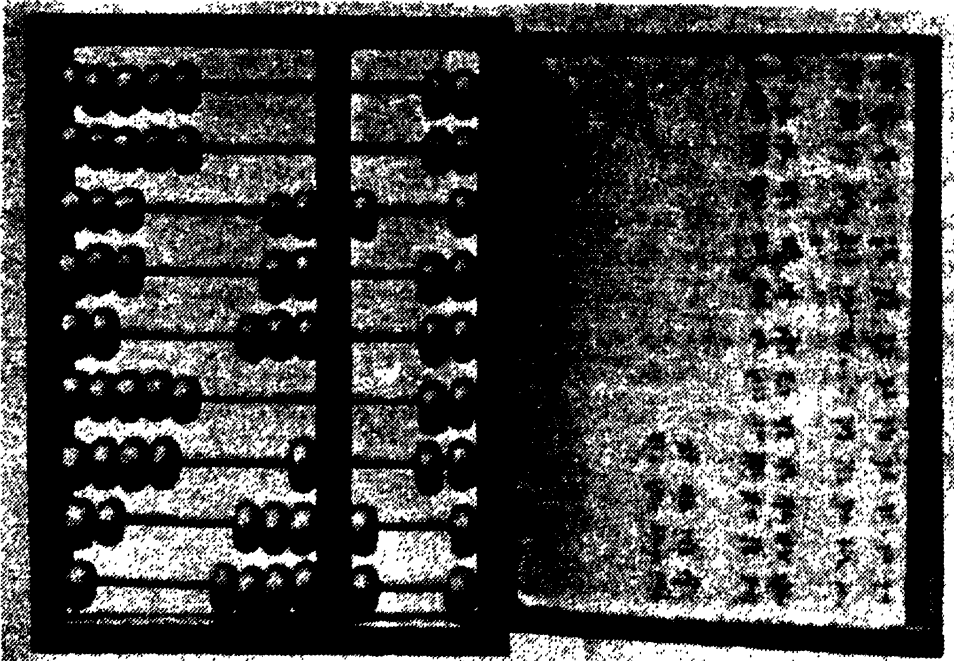
जापानी गणक (एबेकस)

जैसे देश में माता-पिता बच्चों को एबेकस सीखने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

चलिए इस बहस को यहीं छोड़कर वहीं से शुरूआत करते हैं जहां बात छोड़ी थी – एबेकस में एक चौकोर फ्रेम परं समानान्तर तारें लगी होती हैं जिनमें मोती फंसे रहते हैं। लेकिन दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में प्रचलित एबेकस अलग-अलग होते हैं। यानी एबेकस को देखकर यह बताया जा सकता है कि वो दुनिया के किस हिस्से से आया है। जैसे रोमन गणक में हर तार में 10 मोती होते हैं और हर मोती का मान एक इकाई होता है। वहीं चीनी और जापानी एबेकस में खड़ी तारें तो वैसे ही रहती हैं लेकिन वे बीच में एक लंबवत पट्टी से ऊपर और नीचे के हिस्सों में बंटी होती हैं। चीनी गणक में ऊपर वाली तारों में दो-दो मोती और नीचे के हिस्से में पांच-पांच मोती होते हैं। वहीं जापानी गणक में ऊपर एक-एक मोती और नीचे के हिस्से में चार-चार मोती होते हैं। मोतियों का मान दोनो में एक-सा होता है। ऊपर के मोतियों का मान 5 इकाई के बराबर और नीचे के मोतियों का मान एक इकाई होता है। मोतियों की संख्या चाहे कुछ

भी हो गणना करने के मूल सिद्धांत तीनों में एक से होते हैं।

अब हम यहां जिस गणक की चर्चा करेंगे वह रोमन गणक का एक थोड़ा-सा बदला रूप है। इसमें हर तार में 9 मोती फंसे रहते हैं। चलिए, हम एक गणक बनाते हैं और साथ ही यह भी देखते हैं कि गुणा, भाग, जोड़, घटा की क्रियाएं इसमें कैसे की जाती हैं।

अपना गणक बनाएं:

हमें ज़रूरत है एक चौकोर मोटे गत्ते के डिब्बे की, जूते का डिब्बा भी चलेगा। साथ ही यह सब सामान भी चाहिए होगा – 81 बड़े मोती या मोटे किस्म के बटन, लगभग दो मीटर मोटा धागा और मोटी सुई।

सुई में धागा पिरोकर उसमें नीचे की तरफ गांठ लगा दीजिए। चित्र में दिखाए अनुसार सुई से गत्ते के एक तरफ छेद कर दूसरी तरफ निकाल लीजिए। अब नौ मोतियों को धागे में पिरो दीजिए। और फिर दूसरी तरफ सुई से गत्ते को छेद कर धागे को बाहर निकाल लीजिए। ये तैयार हो गई आपकी पहली तार। इसी तरह थोड़ी-थोड़ी दूरी रखकर आठ लाइनें और बना लीजिए; और ये तैयार हो गया आपका गणक।

किस मोती का क्या मान

दाहिनी ओर के तार से शुरू करते हैं। पहली तार के हर मोती का मान एक इकाई है। दूसरी तार के हर मोती का मान 10 इकाई के बराबर है। इसी तरह तीसरी तार के मोती 100 इकाई के बराबर हैं। ऐसे ही आगे बढ़ते रहें तो नौवीं तार के मोती का मान 10 करोड़
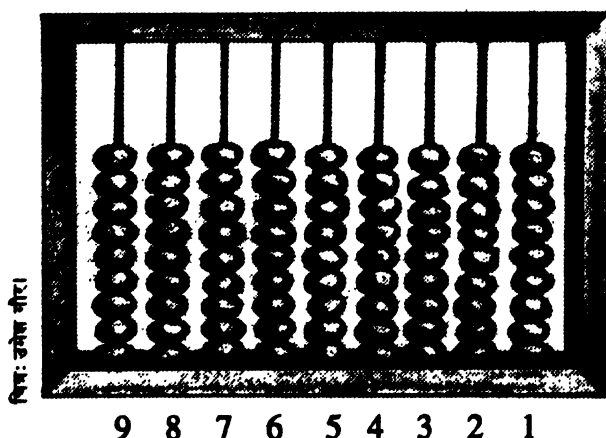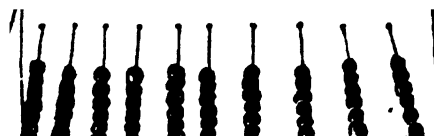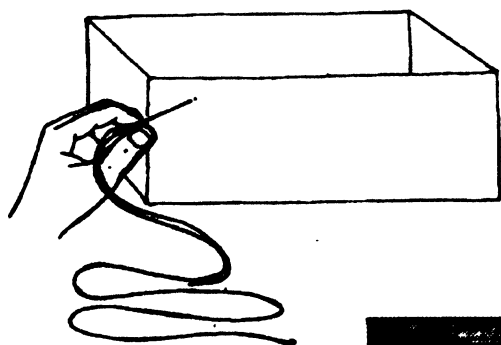
इकाई के बराबर होगा। नियम है कि किसी भी तार के मोती का मान उसके दाहिनी ओर के तार के मोती के मान का दस गुना और बाईं ओर के तार के मान का 1/10 होगा।

कोई भी गणितीय क्रिया करने से पहले गणक को शून्य पर स्थिर करते हैं। ऐसा करने के लिए सभी तार के मोतियों को नीचे खिसका देते हैं। अब गणक पर कोई अंक दिखाने के लिए उससे संबंधित तार के मोतियों को ऊपर खिसका देते हैं। जैसे कि 17049 को गणक पर इस तरह से दिखाएंगे। इस संख्या में इकाई का अंक है नौ, तो पहले स्तंभ के 9 मोतियों को ऊपर खिसका दिया। दहाई का अंक है 4 तो दहाई मान वाले मोतियों के स्तंभ के चार मोती ऊपर उठा दिए। इसी तरह आगे बढ़ते हैं।

17049

1 7 0 4 9
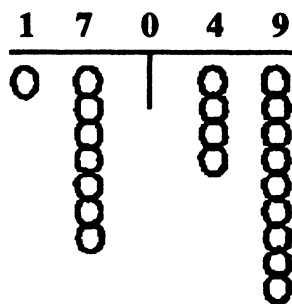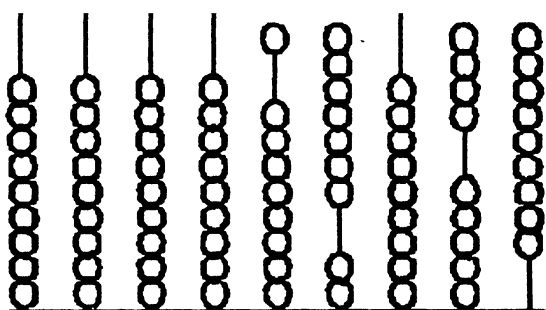
गणक पर जोड़

जैसे हमें 323 में 145 को जोड़ना है:

```
 323
+145
```

इस जोड़ को करने के लिए हम पहले 323 को गणक पर दिखाते हैं। अब आगे का जोड़ हम क्रम से करेंगे। पहले पांच जोड़ने के लिए इकाई स्तंभ के पांच मोती ऊपर कर दिए। इसी तरह 40 जोड़ने के लिए दहाई के तार से चार मोती ऊपर कर दिए। अंत में 100 जोड़ने के लिए सैंकड़े के तार का एक मोती ऊपर कर दिया। अब ज़रा मोती गिनते हैं कि हमने कितने ऊपर चढ़ाए। सैंकड़े वाले स्तंभ में चार मोती यानी 400, दहाई वाले स्तंभ में 6 मोती यानी 60 और इकाई के स्तंभ में 8 मोती। कुल जोड़ हुआ 468. लेकिन ये तो एक सरल-सा जोड़ था।

323

323 + 5 = 328

एक दूसरा जोड़ देखते हैं।

```
  323
 +148
```
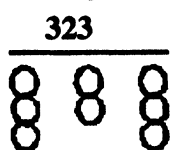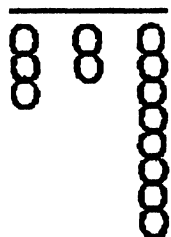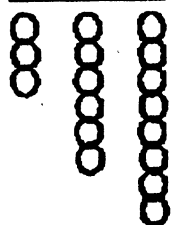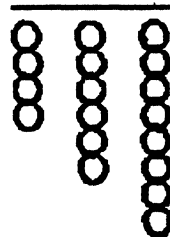
शुरुआत इसमें भी उसी तरह से करते हैं – 323 को गणक पर दिखाकर। अब पहले जोड़ना है 8 जिसके लिए आठ मोती ऊपर ले जाने होंगे; लेकिन इकाई के स्तंभ में हमारे पास इतने मोती नहीं हैं। यह तो हमें मालूम है कि 8 को इस तरह भी लिखा जा सकता है 10 – 2 = 8; तो हम गणक के दहाई वाले स्तंभ का एक मोती ऊपर उठा देते हैं और इकाई वाले स्तंभ के दो मोती नीचे। इस तरह हमने 323 में 8 जोड़ दिए। अब जोड़ना है 40; दहाई वाले तार में हमारे पास पर्याप्त मोती हैं, इनमें से चार ऊपर कर दिए। इसी तरह 100 जोड़ने के लिए सैंकड़े वाले तार से एक मोती ऊपर कर दिया। अब देखें कि हमने कितने मोती ऊपर उठाए यानी कुल कितना जोड़ आया। सैंकड़े वाले स्तंभ में चार यानी 400; दहाई वाले में 7 मोती, यानी 70; और इकाई वाले में एक मोती। कुल उत्तर आया 471.

323 | **323 + 8 = 323 + 10 - 2 = 331** | **331 + 40 = 371** | **371 + 100 = 471**

गणक पर घटाना

गणक पर साधारण घटाना उतना ही आसान है जितना पहले वाला साधारण जोड़ था। उदाहरण के लिए थोड़ी जटिल-सी संख्याएं लेते हैं।

```
  428
 -145
```

पहले गणक पर 428 संख्या दिखा दी। अब पहले घटाना है पांच तो इकाई के ऊपर चढ़े 8 मोतियों में से 5 नीचे कर दिए। दूसरे चरण में घटाना है चालीस। अब नीचे करने के लिए चाहिए चार मोती, लेकिन दहाई के स्तंभ में ऊपर हैं सिर्फ दो मोती, तो फिर? इस बार भी कुछ उसी तरह करें जैसे जोड़ में किया था। हमें मालूम है कि 40 को इस तरह भी लिखा जा सकता है 100 – 60 = 40; इसलिए सैंकड़े

के स्तंभ में 1 मोती नीचे उतारा और दहाई के स्तंभ में छह मोती ऊपर चढ़ा दिए। अब तीसरे और अंतिम चरण में हमें घटाना है 100; बस इसे करने के लिए सैंकड़े के तार में ऊपर चढ़े मोतियों में से एक नीचे उतार दिया। अब देखें गणक पर घटाने के बाद हमारे पास क्या बचा। सैंकड़े के स्तंभ में दो मोती यानी 200; दहाई के तार में 8 मोती यानी 80; और इकाई के तार में तीन मोती; कुल मिलाकर हमारे पास 283 बचा।

428   **428 - 5 = 423**   **423 - 40 = 423 - 100 + 60 = 383**   **383 - 100 = 283**

8   8   8

8

गणक पर गुणा

वैसे देखें तो गुणा भी एक तरह का लगातार जोड़ है। गणक में इस क्रिया को करने के लिए इसी गुण का उपयोग करते हैं। जैसे कि:

135

×27

इसे इस तरह भी लिख सकते हैं 135×20 + 135×7; इस गुणा को गणक पर भी इसी तरह दो हिस्सों में करेंगे। पहले हिस्से में 135 में 7 का गुणा कर परिणाम को गणक पर प्रदर्शित करेंगे और दूसरे हिस्से में 135 में 20 का गुणा कर आने वाली संख्या को पहले हिस्से के परिणाम में जोड़ देंगे। आइए इसे करके देखते हैं।

135×7 को इस तरह भी लिखा जा सकता है (100+30+5) × 7; इसे भी अलग-अलग करके देखें तो सबसे पहले 5×7 = 35; अब इस 35 को गणक पर दिखाना है। वही पुराना तरीका इकाई स्तंभ के 5 मोती और दहाई के 3 मोती ऊपर कर दिए। उसके बाद 30 × 7 = 210, इसको गणक पर दिखाई गई पहली संख्या 35 में जोड़ देंगे, सैंकड़े के तार में दो मोती और दहाई के तार में एक मोती ऊपर करके। इकाई के स्थान पर शून्य है यानी इस तार में कोई भी मोती ऊपर नहीं उठाना है। अब गणक पर जो संख्या प्रदर्शित है वो है 245; अब हमें 100 का 7 से गुणा करना है और उसे 245 में जोड़ना है। हमारे पास गणक के सैंकड़े के स्तंभ में पर्याप्त मोती बचे हैं, इसलिए इस 700 को 245 में जोड़ने के लिए बस इतना करेंगे कि सैंकड़े के स्तंभ में सात मोती ऊपर उठा दिए। अब कुल जोड़ के रूप में
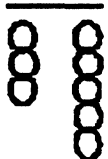
गणक पर हमारे पास है 945:

अभी दूसरा हिस्सा बचा है यानी 135 × 20; इसमें भी वही करना है कि क्रम से गुणा करते जाओ और आने वाली संख्या को गणक पर पहले प्रदर्शित संख्या में जोड़ते जाओ।

तो 5 × 20 से मिली संख्या 100; इसे गणक पर पहले से मौजूद 945 में जोड़ना है। सीधे-सीधे देखें तो करना यह चाहिए कि सैंकड़े के स्तंभ से एक मोती ऊपर उठा दिया जाए, लेकिन हकीकत में गणक पर सैंकड़े के तार में एक भी मोती नीचे नहीं है सारे-के-सारे नौ ऊपर हैं! तो फिर? जैसे कि हमने गणक पर जोड़ करते समय सीखा था, 100 जोड़ने का मतलब है कि 1000 जोड़ दो और 900 घटा दो। इस प्रक्रिया को करने के लिए हम हज़ार के तार से एक मोती ऊपर उठाएंगे और सैंकड़े के स्तंभ से नौ मोती नीचे गिराएंगे। अब 30 को 20 से गुणा करना है और उसे गणक पर दर्शाई गई संख्या में जोड़ना है। अंत में 100 को 20 से गुणा करना है और उसे भी गणक पर जोड़ देना है। अब देखते हैं कि गणक पर क्या स्थिति है।

हज़ार के स्तंभ में तीन मोती ऊपर हैं यानी 3000, सैंकड़े के तार में छह मोती यानी 600; दहाई में चार मोती यानी 400; और इकाई में पांच मोती। यानी कुल जोड़ 3645 है, जो दोनों संख्याओं के गुणा के बराबर होगा।
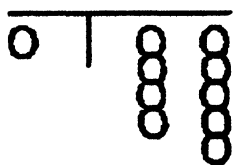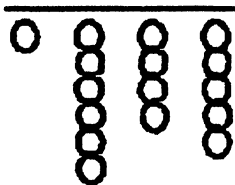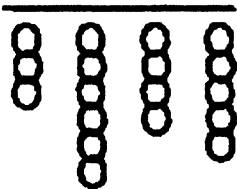
गणक पर भाग

भाग दरअसल लगातार घटाने की विधि है और गणक पर की जाने वाली क्रियाओं में सबसे कठिन भी। इसे सीखने के लिए आइए उदाहरण के रूप में 13824 को 54 से विभाजित करते हैं। मोटे तौर पर भाग की इस क्रिया के लिए हम गणक को दो भागों में बांट लेते हैं, ताकि एक तरफ भाग किया जा सके और दूसरी तरफ उसके उत्तर को दर्शाया जा सके।

सबसे पहले इस संख्या 13824 को गणक पर दर्शाते हैं; गणक पर बिल्कुल बाएं से शुरू करके। यह पांच अंकों की संख्या है तो बाएं कोने से पांचवें स्तंभ को इकाई मानकर क्रमशः इस संख्या को गणक पर प्रदर्शित कर दिया।

अब हमारी यह संख्या 10,000 के आसपास है और विभाजक लगभग 50 का है तो आने वाला हल 200 के आसपास की कोई संख्या होगी। यानी इसे दर्शाने के लिए दाहिनी तरफ के तीन तार पर्याप्त रहेंगे। अब भाग करते हैं:

54 का भाग 1 या 13 में नहीं जा सकता लेकिन 138 में दो बार जाता है; तो दाहिनी तरफ के जो तीन स्तंभ छोड़े हैं उनमें सैंकड़े के तार में दो मोती ऊपर उठा दिए; और आगे के कदम के रूप में 54 का 200 गुना यानी 10800 गणक पर दर्शाई संख्या 13824 में से घटा दिया। अब हमारे पास गणक पर बाईं तरफ वाले हिस्से में बची संख्या है 3024 और दाहिनी ओर है 200; इसी तरह 54 का 302 में पांच बार भाग जाता है तो गणक पर दाहिनी ओर दहाई के तार में पांच मोती ऊपर उठा दिए; और 54 का 50 गुना यानी 2700 को 3024 में से घटा दिया। अंत में हमारे पास बाईं तरफ बचे 324 और दाहिनी तरफ 250; (यहां यह
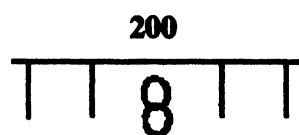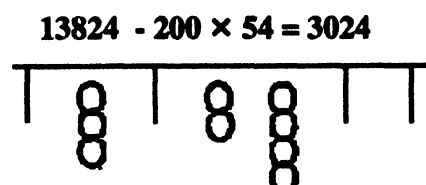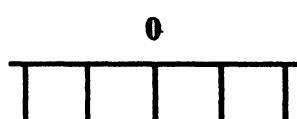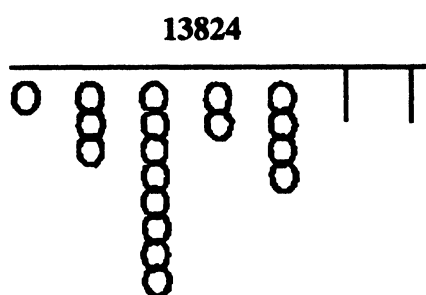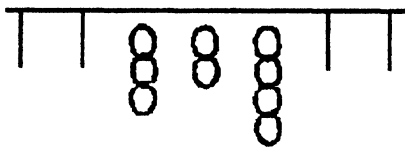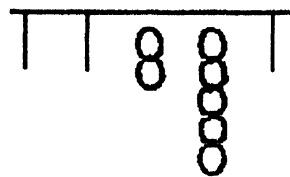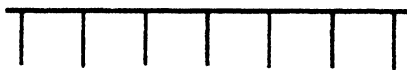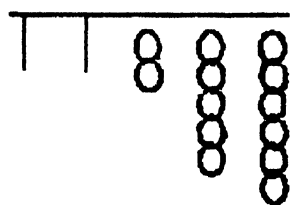
ध्यान रखें कि 3024 में से 2700 घटाने का मतलब है 3000 घटाना और 300 जोड़ना। अब जो संख्या हमारे पास बची है वो है 324 और 54 का इसमें सीधे-सीधे छह बार भाग जाता है, तो हमने दाहिनी तरफ इकाई के स्तंभ में छह मोती ऊपर उठा दिए। और बाईं तरफ 54 का छह गुना यानी 324 बची संख्या 324 में से घटा दिया – बाकी बचा शून्य यानी बाईं ओर के कोने के सारे मोती नीचे आ चुके हैं। और उत्तर 256 प्रदर्शित है गणक के दाहिनी ओर।

स्वाभाविक है कि गणक पर होने वाली इन सब क्रियाओं के बारे में पढ़ते हुए आपको लग रहा होगा कि जब सीधे-सीधे आंकड़ों में गुणा भाग किया जा सकता है तो फिर ये सब तामझाम क्यों? इस सवाल का कोई आसान जवाब नहीं है – यही कहा जा सकता है कि शायद पढ़ने की बजाए गणक बनाकर ये सब गणनाएं करें तो इतना मुश्किल नहीं लगेगा। और एक बार गणक पर काम करने की आदत बन जाए तो शायद रफ्तार भी आ जाएगी प्रेक्टिस से।

(विजय शंकर वर्मा – दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक।)

ज़रा सिर तो खुजलाइए

कोई भी बच्चा इस लड़के के साथ खेलने को तैयार नहीं है। लेकिन इसे कोई परवाह नहीं। उसने झूलने के लिए क्या तरकीब लगाई होगी इस चित्र को देखकर सोचिए और हमें लिख भेजिए।

संदर्भ, द्वारा एकलव्य कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461 001। सही जवाब अगले अंक में प्रकाशित किया जाएगा।

यूं टूटा कैलोरिक का तिलिस्म

• अजय शर्मा

विज्ञान में भी कई भ्रामक मान्यताएं जगह बना लेती हैं जिन्हें कभी-न-कभी चुनौतियों का सामना करना ही पड़ता है। उष्मा का कैलोरिक सिद्धांत भी एक ऐसा ही सिद्धांत था जिसे चुनौती मिली एक शाही तोपखाने से। क्यों और कैसे – पढ़िए इस लेख में।

उष्मा (यानी गर्मी) और उससे जुड़े तथ्यों के बारे में अटकलें लगाना वैज्ञानिकों का खासा शगल रहा है। इन वैज्ञनिकों की लम्बी फेहरिस्त में एक नाम काउंट रमफोर्ड का भी है। रमफोर्ड (1753–1814) एक दिलचस्प शख्सियत के मालिक थे। अपने ज़माने में उनका यूरोप में एक जाने-माने वैज्ञानिक और कुशल युद्ध विशेषज्ञ के रूप में खासा दबदबा हुआ करता था। उनकी बहुआयामी प्रतिभा को देखते हुए बरतानिया सरकार ने उन्हें एक महत्वपूर्ण काम सौंप रखा था। यह काम था शाही फौज के लिए अपनी देखरेख में तोपों की नलियों में सुराख करवाना।

इस काम के लिए एक खास किस्म की मशीन का इस्तेमाल किया जाता था। इस मशीन में विशेष किस्म के धातु काटने वाले सयंत्र लगे हुए थे जो ठोस इस्पात को काटते हुए तोपों की नलियों में आर-पार, एक सही नाप का छेद कर दिया करते थे। इन खास किस्म के कटर्स को अश्व-शक्ति से घुमाया जाता था। इस काम को करने वाले लोग भी जानते थे कि तोपों में छेद करते समय नली जल्दी ही गर्म हो जाती है। इस काम में इतनी गर्मी पैदा होना एक साधारण-सी बात मानी जाती थी; तोपखाने में काम करने वालों के लिए भी और वैज्ञानिकों के लिए भी।

हरेक चीज़ कैलोरिक से भरी

दरअसल उन दिनों विज्ञान-जगत में उष्मा की प्रकृति को लेकर एक मत काफी जोर-शोर से छाया हुआ था; वह था 'कैलोरिक का सिद्धांत'। इसके हिसाब से तोपों में छेद करते समय अत्याधिक गर्मी पैदा होने का एक सरल-सा कारण था – इस सिद्धांत के मुताबिक यह माना जाता था कि उष्मा दरअसल कैलोरिक नाम का द्रव्यमान रहित तरल पदार्थ है जो हरेक वस्तु में उसके तापमान के अनुपात में मौजूद रहता है। यानी तोपों की नलियों में भी कैलोरिक भरी होती है। अब जिस तरह किसी फल को काटने पर उसमें से रस टपकने लगता है लगभग उसी तरह तोपों में छेद करने पर उसमें से कैलोरिक का रिसाव होने लगता है और नली गर्म हो जाती है।

इस विश्लेषण से अधिकांश वैज्ञानिक संतुष्ट थे लेकिन रमफोर्ड को यह बात ज़रा भी नहीं जंची। तोपखाने के अपने अनुभवों की वजह से उन्हें लगा कि असल माजरा कुछ और ही है। साथ-ही-साथ उन्हें कैलोरिक सिद्धांत की प्रामाणिकता पर भी शक होने लगा। लिहाज़ा रमफोर्ड ने अपने तोपखाने को ही प्रयोगशाला बनाकर कई प्रयोग किए और इस नतीजे पर पहुंचे कि कैलोरिक सिद्धांत सही नहीं है।

इन प्रयोगों से कैलोरिक सिद्धांत को ऐसा करारा झटका लगा कि वह फिर कभी उबर नहीं पाया और उष्मा के बारे में हमारी समझ को आखिरकार एक दिशा मिली। तोपखाने में जन्मे प्रश्न उष्मा जैसी महत्वपूर्ण वास्तविकता को समझने के लिए कितने अनमोल साबित हुए यह अब एक सुखद आश्चर्य की बात ही लगती

है। हालांकि एक समग्र दृष्टिकोण से देखा जाए तो विज्ञान के इतिहास में ऐसी घटनाएं अनेक बार घटी हैं। आखिर आर्किमीडीज़ को अपना उत्प्लावन का सिद्धांत गुसलखाने में तो सूझा था।

गर्मी के मायने

वैसे यह भी एक दिलचस्प इत्तफाक ही है कि हालांकि गर्मी की अनुभूति हमारे दैनिक अनुभवों का एक अनिवार्य अंग है, पर गर्मी आखिर क्या 'चीज़' है यह सवाल आम आदमी के लिए हमेशा उलझन भरा रहा है। करीब 125 साल पहले तक तो वैज्ञानिकों में भी इस सवाल को लेकर काफी मतभेद थे। इन मतभेदों को दूर करने के लिए कई चोटी के वैज्ञानिकों को कई साल तक जद्दो-जहद करनी पड़ी और तब कहीं जाकर मामला साफ हुआ। इस लेख में हम इसी सवाल पर चर्चा करके उष्मा के बारे में एक सही शुरुआती समझ विकसित करने की कोशिश करेंगे। लेकिन इससे पहले कि गर्मजोशी से गर्मी की जांच-पड़ताल शुरू करें, क्यों न रमफोर्ड वाला किस्सा पूरा ही कर लिया जाए?

रमफोर्ड ने तोड़ी खुशफहमी

अब जैसा हमने पहले ज़िक्र किया था रमफोर्ड ने कैलोरिक सिद्धांत को परखने के लिए कई प्रयोग किए और उन्होंने पाया कि मात्र घर्षण द्वारा भी किसी भी धातु से, बिना उसमें बदलाव लाए, ढेर सारी गर्मी पैदा की जा सकती है। इस तरह गर्मी पैदा करने से धातु के द्रव्यमान पर कोई असर नहीं पड़ता। तोपों की नलियों में सुराख करते वक्त गर्मी पैदा होने के बारे में उनका निष्कर्ष था कि इस गर्मी का असली स्रोत उन घोड़ों की ऊर्जा है जिनकी शक्ति से सुराख करने वाला यंत्र चलता है। यानी घोड़ों की

ताकत ही घर्षण द्वारा गर्मी में परिवर्तित हो जाती है। सन् 1798 में लिखे एक यादगार पर्चे में उन्होंने दावा किया कि उष्मा कोई पदार्थ नहीं हो सकती बल्कि उष्मा का गहन संबंध तो पदार्थों में अवतरित होने वाली 'माइक्रोस्कोपिक गतियों' से होना चाहिए।

दरअसल, रमफोर्ड पहले वैज्ञानिक नहीं थे जिन्होंने उष्मा को सूक्ष्म गतियों से जुड़ा पाया। 17वीं और 18वीं सदी में प्रायः सभी वैज्ञानिकों के मत इसी तरह के थे। मसलन न्यूटन भी इसी तरह के विचार रखते थे। फिर भी जिस वक्त रमफोर्ड अपने प्रयोग कर रहे थे कैलोरिक सिद्धांत धीरे-धीरे विज्ञान जगत में अपनी पकड़ मज़बूत कर चुका था। यह शायद इसलिए कि उन दिनों रसायन विज्ञान में नित दिन नई-नई खोजें हो रही थीं और इन खोजों को समझने में कैलोरिक सिद्धांत काफी उपयोगी साबित हो रहा था। एक कारण यह भी है कि रमफोर्ड से पहले उष्मा को 'माइक्रोस्कोपिक गतियों' की अभिव्यक्ति के रूप में देखना महज एक आकर्षक और प्रभावशाली विचार था, प्रयोगों की कसौटी पर खरा उतरा सिद्धांत नहीं।

अब मज़े की बात यह थी कि रमफोर्ड का निशाना सही था फिर भी उनके शिकार ने उसकी चोट से दम नहीं तोड़ा। सन् 1798 के करीब 50 साल बाद भी कोई-न-कोई वैज्ञानिक गुट कैलोरिक सिद्धांत का हिमायती बना रहा। बहरहाल इसमें कोई शक नहीं कि रमफोर्ड के प्रयोगों के बाद कैलोरिक सिद्धांत की प्रतिष्ठा में निरंतर ह्रास होता गया और एक बार फिर उष्मा को पदार्थों में होने वाली सूक्ष्म गतियों से जुड़ा हुआ देखने की परंपरा बलवती होती गई।

रमफोर्ड के प्रयोगों के कारण कब्र से उठ खड़ी हुई इस अवधारणा को एक ठोस नींव प्रदान की जूल और मेयर के प्रयोगों ने। सन् 1840-50 के दौरान किए गए इन प्रयोगों से साफ ज़ाहिर हो गया कि उष्मा वास्तव में ऊर्जा का ही एक रूप है। इसी दौरान कई वैज्ञानिकों (जिनमें मेक्सवेल का नाम प्रमुख है) के शोध कार्यों ने भी सूक्ष्म गति वाली बात को समझने में मदद की। यही विचार आज भी उष्मा की अवधारणा के केन्द्र बिन्दु के रूप में प्रतिष्ठित है।
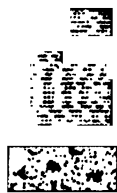
कुछ तो ठंडा, कुछ गर्म

चलिए, बहुत हो गया इतिहास के इन गलियारों में घूमना-फिरना, इसके बाद अब शुरू करते हैं कोशिश उष्मा को समझने की, उष्मा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की। वैसे उष्मा का वैज्ञानिक पहलू जो भी हो एक बात तो सभी स्वीकार करेंगे कि जहां तक अपने दैनिक जीवन का सवाल है, उष्मा से हमारा परिचय एक व्यक्तिगत अनुभूति के रूप में ही होता है। कोई चीज़ हमें

ठंडी लगती है तो कोई गर्म। आग के पास खड़े होने पर जब हमारा शरीर गर्म होने लगता है तो हम कहते हैं कि गर्मी हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है। या फिर हम देखते हैं कि जलते हुए चूल्हे की गर्मी मिलने पर उस पर रखा हुआ पानी गर्म हो उठता है। हमारे इस तरह के अनुभव हमें इतना तो बताते हैं कि उष्मा कुछ ऐसी चीज़ है जो ज़्यादा तापमान से कम तापमान की ओर बहती है। गर्म वस्तु से ठंडी वस्तु की तरफ या फिर किसी एक पदार्थ के गर्म हिस्से से अपेक्षाकृत ठंडे हिस्से की तरफ। पर आखिर यह चीज़ क्या है इसका सिर्फ एक धुंधला-सा अनुमान ही लग पाता है।

जैसा कि हमने ज़िक्र किया था हमारे धुंधले अनुमानों को स्पष्टता मिली जूल और मेयर के महत्वपूर्ण प्रयोगों द्वारा। उनकी शोध से यह साबित हो गया कि यह चीज़ वास्तव में एक प्रकार की ऊर्जा ही है। मिसाल के तौर पर जब हम अपने से गर्म किसी वस्तु को छूते हैं तो वह ऊर्जा ही होती है जो गर्म वस्तु से हमारे हाथ में आ जाती है और हमारा हाथ गर्म हो जाता है। ऊर्जा का यह स्थानांतरण ही उष्मा कहलाता है। उष्मा हमेशा ज़्यादा तापमान से कम तापमान की ओर बहती है। गर्म वस्तु से ठंडी वस्तु की ओर। इस समझ के आधार पर हम कह सकते हैं कि — तापमान भिन्न होने के कारण दो वस्तुओं के बीच बहने वाली ऊर्जा को उष्मा कहते हैं।

यह एक अनुभव की बात है कि जब किसी गर्म वस्तु को एक ठंडी वस्तु के संपर्क में लाया जाता है तो कुछ समय बाद दोनों चीज़ों का तापमान एक समान हो जाता है। ऐसी स्थिति को वैज्ञानिक 'उष्मीय संतुलन' कहते हैं। उष्मीय संतुलन वाला तापमान गर्म वस्तु के तापमान से कम और ठंडी वस्तु के तापमान से ज़्यादा होता है।

हमारी अब तक की चर्चा दैनिक जीवन के अनुभवों पर ही आधारित थी। इस चर्चा में हम उष्मा के एक अहम पहलू से वाकिफ हुए हैं। परन्तु अगर हमें एक गहरी समझ बनानी है तो उष्मा से जुड़ी प्रक्रियाओं को आणविक स्तर पर समझना लाज़िमी हो जाता है।

जैसा कि आप जानते होंगे सभी पदार्थ अणुओं-परमाणुओं से बने होते हैं। ये कण सतत हिलते-डुलते रहते हैं, कभी भी एक बिन्दु पर स्थिर नहीं रहते। जैसे अगर गैसीय अवस्था की बात करें तो किसी भी गैस में सामान्य दबाव पर, अणु-परमाणु बिना किसी बल के प्रभाव में और स्वतंत्रता से पूरे आयतन में (जिसमें गैस मौजूद होती है) इधर-उधर, एक-दूसरे से टकराते हुए विचरते रहते हैं। गैस ऐसे ही स्वतंत्र और गतिशील कणों की बनी हुई होती है। द्रव में अणुओं के बीच एक हल्का आकर्षण बल मौजूद रहता है जिसके कारण वे एक-दूसरे से थोड़े बंधे से रहते हैं लेकिन फिर भी अणु धीमी गतियों से द्रव के पूरे आयतन में घूमते रहते हैं। हां, ठोस पदार्थों में ज़रूर हालात थोड़े जुदा हो जाते हैं। यह इसलिए क्योंकि इनके अणुओं के बीच एक शक्तिशाली आकर्षक बल मौजूद होता

है जो पड़ोसी अणुओं को एक-दूसरे से एक स्प्रिंग की माफिक बांधकर रखता है। यानी हरेक कण अपनी जगह पर बधकर रह जाता है। लेकिन ये कण स्थिर तो ठोस पदार्थ में भी नहीं रहते, हरेक कण अपने 'औसत स्थान' से इधर-उधर हमेशा हिलता-डुलता रहता है। कणों की यह स्थानांतरण चाल (ट्रांसलेशनल मोशन) चाहे वे ठोस, द्रव या गैस के हों, उनको एक गतिज ऊर्जा प्रदान करती है। किसी पदार्थ के सभी कणों की कुल गतिज ऊर्जा को उस पदार्थ की उष्मीय ऊर्जा कहते हैं। ज़ाहिर है कि किसी अणु की गतिज ऊर्जा उसकी स्थानांतर गति पर निर्भर करती है। यानी धीरे हिलने वाले कणों की गतिज ऊर्जा कम और तेज़ी से हिलने वाले कणों की गतिज ऊर्जा ज़्यादा होगी।

कैसे चलती है उष्मा

अब जहां तक उन पदार्थों का सवाल है जिनके सबसे छोटे कण परमाणु हैं, अणु नहीं, ऊपर दी गई जानकारी उनकी सूक्ष्मस्तरीय संरचना के बारे में एक सही तस्वीर उभारती है। परन्तु उन पदार्थों में (चाहे वह ठोस, द्रव या गैस हों) जिनके सबसे छोटे कण अणु हैं कुछ नई जटिलताएं उभर आती हैं जिन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इन जटिलताओं की वजह है अणुओं की अपनी अंदरूनी बनावट। चूंकि अणु खुद परमाणुओं से बने होते हैं, उनमें स्थानांतर चाल के अलावा दो और किस्म की चालें संभव हैं – घूर्णन और कंपन। यानी अणु इधर-उधर घूमने-फिरने या हिलने-डुलने के अलावा कंपन और/या घूर्णन भी करें ऐसी संभावना को नकारा नहीं जा सकता।

अब अगर किसी पदार्थ के अणुओं में स्थानांतरण चाल के अलावा घूर्णन और/या कंपन भी हो रहा है तो ज़ाहिर है अणुओं के पास स्थानांतरण चाल से उत्पन्न गतिज ऊर्जा के अलावा कुछ और ऊर्जा भी होगी जिसे अणुओं का कंपन और/या घूर्णन जन्म देता है। इस अतिरिक्त ऊर्जा को हम अणुओं की आंतरिक स्थितिज ऊर्जा कह सकते हैं। ज़ाहिर है कंपन और/या घूर्णन जितना तेज़ होगा, अणु की आंतरिक स्थितिज ऊर्जा भी उतनी ही अधिक होगी। यानी किसी पदार्थ में:

कुल संचित ऊर्जा = अणुओं की कुल गतिज ऊर्जा (उष्मीय ऊर्जा) + कुल आंतरिक स्थितिज ऊर्जा (अगर है तो)

इस कुल संचित ऊर्जा को पदार्थ की आंतरिक ऊर्जा (इंटरनल एनर्जी) कहते हैं। अब फिर बात करते हैं उष्मा की, और देखते हैं कि
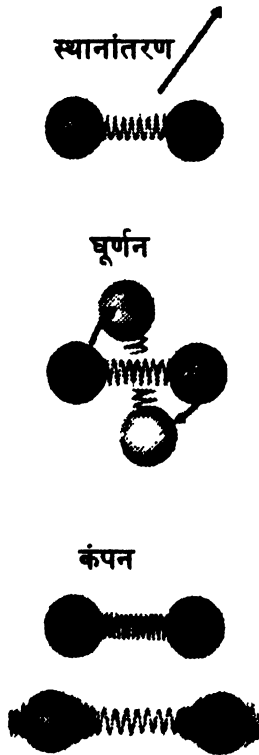
आणविक स्तर पर इस अवधारणा की क्या तस्वीर उभरती है। अभी तक की गई चर्चा के आधार पर यह बखूबी साबित हो जाता है कि किसी वस्तु का तापमान उसके कणों की स्थानांतर गतियों से यानी पदार्थ की उष्मीय ऊर्जा से जुड़ा हुआ है। दूसरे शब्दों में उष्मीय ऊर्जा एक तरह की तापमान ऊर्जा है, वह ऊर्जा जो उसके तापमान को जन्म देती है। यही वजह है कि यह ऊर्जा हमारे जीवन के अनगिनत पहलुओं में शामिल है – भोजन पकाने से अपने शरीर को गर्म रखने तक। जिस वस्तु में जितनी ज़्यादा उष्मीय ऊर्जा होती है उसका तापमान उतना ही अधिक होता है। मिसाल के तौर पर आपने अनुभव किया होगा कि जब हम किसी धातु की वस्तु पर हथोड़े से चोट करते हैं तो वह गर्म हो जाती है। क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा क्यों होता है?
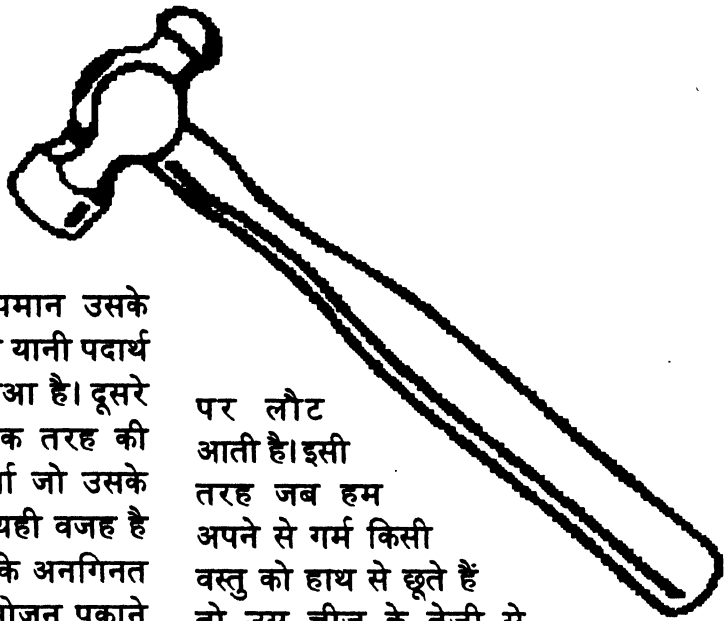
दरअसल हथोड़े के प्रहार से धातु के अणु पहले की अपेक्षा ज़्यादा वेग से हिलने लगते हैं। इससे धातु की उष्मीय ऊर्जा बढ़ जाती है। जहां यह सब हो तो भला तापमान कैसे पीछे रह जाए! वह भी देखा-देखी ऊपर चढ़ जाता है। बाद में हथोड़े से चोटों का सिलसिला बंद करने पर धातु के उत्तेजित कण धीरे-धीरे अपनी गतिज ऊर्जा आसपास की हवा (या जिस भी माध्यम में वह वस्तु है) के कणों को स्थानांतरित कर देते हैं। इससे खुद उनका हिलना-डुलना धीमा पड़ जाता है और वस्तु फिर से अपने पहले वाले तापमान पर लौट आती है। इसी तरह जब हम अपने से गर्म किसी वस्तु को हाथ से छूते हैं तो उस चीज़ के तेज़ी से हिलते-डुलते कण अपनी कुछ गतिज ऊर्जा हमारे हाथ के अणुओं को स्थानांतरित करके उन्हें उत्तेजित कर देते हैं। अर्थात वह गर्म वस्तु अपनी कुछ उष्मीय ऊर्जा उष्मा के माध्यम से हमारे हाथ को पहुंचा देती है और हमारा हाथ भी गर्म हो जाता है।

अब सवाल यह उठता है कि क्या हमारे हाथ को मिलने वाली उष्मा सारी-की-सारी उष्मीय ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है? संभवतः नहीं। वे पदार्थ जिनके सबसे छोटे कण अणु हैं परमाणु नहीं, उनमें ज़रूरी नहीं कि दी जाने वाली सारी उष्मा पदार्थ की अपनी उष्मीय ऊर्जा में परिवर्तित हो! यह भी संभव है कि उष्मा का कुछ ही भाग उष्मीय ऊर्जा में बदले और शेष अणुओं की आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाए। दरअसल, अक्सर ऐसा ही होता है (पर हमेशा नहीं)।

अब दिलचस्प बात यह है कि स्थितिज

ऊर्जा पदार्थ का तापमान बढ़ाने में बिलकुल भी योगदान नहीं देती। अर्थात अगर किसी पदार्थ को मिलने वाली सारी की सारी उष्मा उसकी आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाए तो उस पदार्थ का तापमान लेशमात्र भी न बढ़ेगा। मिसाल के तौर पर, जब कोई पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता है जैसे बर्फ पिघलकर पानी बनाती है या पानी उबलकर वाष्प में परिवर्तित हो जाता है, तो इस अंतराल के दौरान पदार्थ को मिलने वाली सम्पूर्ण उष्मा अणुओं की आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में ही जुड़ती है। पदार्थ की उष्मीय ऊर्जा में ज़रा भी इज़ाफा नहीं होता। यही कारण है कि जब आप बर्फ को गर्म करके पिघला रहे होते हैं तो जब तक पूरी-की-पूरी बर्फ नहीं पिघल जाती बर्फ और पानी के मिश्रण का तापमान ज़रा भी नहीं बढ़ता। वह शून्य डिग्री सेल्सियस पर ही बना रहता है। हां, किसी पदार्थ को उष्मा देने पर इस अपवाद से एकदम उल्टा हो सकता है। यानी यह भी हो सकता है कि सम्पूर्ण उष्मा पदार्थ की उष्मीय ऊर्जा में ही परिवर्तित हो जाए। ऐसा अक्सर बहुत कम तापमान पर ही होता है। मिसाल के तौर पर हाइड्रोजन गैस/द्रव का तापमान जब तक लगभग −200 डिग्री सेल्सियस से नीचे रहता है उसको दी जाने वाली उष्मा पूरी की पूरी उष्मीय ऊर्जा यानी अणुओं की औसत स्थानांतर गति में ही परिवर्तित होती है। यहां हम यह मानकर चल रहे हैं कि पदार्थ का अपने वातावरण के साथ उष्मा के अलावा किसी रूप में ऊर्जा का आदान-प्रदान नहीं हुआ है। यानी

प्राप्त उष्मा = उष्मीय ऊर्जा में बढ़त + आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में बढ़त = पदार्थ की कुल आंतरिक ऊर्जा में बढ़त

यानी आणविक स्तर पर हम कह सकते हैं कि उष्मा पदार्थ की वो आंतरिक ऊर्जा है जो तापमान भिन्न होने के कारण उसे प्राप्त होती है या उससे निकास होती है।

तापमान वृद्धि किसमें ज़्यादा

उष्मा मिलने पर तापमान बढ़ता है यह बात तो साफ है। पर हमारा अनुभव यह भी बताता है कि सभी पदार्थों में यह बढ़ोतरी एक सरीखी नहीं होती। मसलन, आपके पास एक तापमान पर बराबर वज़न के दो टुकड़े हैं – एक एल्यूमिनियम का, दूसरा तांबे का। आप इन दोनों में बराबर मात्रा में उष्मा देते हैं। अब बताइए कि क्या दोनों टुकड़ों में तापमान की बढ़त एक-सी होगी? शायद आपको यह जानकर अचरज हो कि अगर तांबे का तापमान 100 डिग्री सेल्सियस से बढ़ता है तो एल्यूमिनियम के तापमान में मात्र 44 डिग्री सेल्सियस का इज़ाफा होगा। अगर आप चाहते हैं कि

एल्यूमिनियम का तापमान भी 100 डिग्री सेल्सियस बढ़े तो आपको एल्यूमिनियम को तांबे के मुकाबले तकरीबन दुगनी से भी ज़्यादा उष्मा देनी होगी।

हम इसी प्रयोग को पारे और पानी के साथ दोहराएं तो पाएंगे कि जितनी उष्मा से पारे का तापमान 100 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है उतनी उष्मा (बराबर वज़न के) पानी के तापमान में सिर्फ 3.3 डिग्री सेल्सियस का फर्क ला पाती है। आप सोच रहे होंगे कि भला इतना फर्क क्यों?

यह इसलिए कि मिलने वाली उष्मा का कितना भाग उष्मीय ऊर्जा में जाएगा और कितना आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में – इसका अनुपात हरेक पदार्थ में भिन्न होता है। किसी पदार्थ में प्राप्त उष्मा का ज़्यादा बड़ा भाग आंतरिक ऊर्जा में परिवर्तित होता है तो किसी में कम। अब ज़ाहिर है कि प्राप्त उष्मा का जितना बड़ा भाग आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित होगा तापमान उतना ही कम बढ़ेगा। उपरोक्त उदाहरणों में तापमानों की बढ़ोतरी में अंतर के पीछे इसी फर्क का हाथ है। मसलन पारे की अपेक्षा पानी में प्राप्त उष्मा का ज़्यादा बड़ा भाग आंतरिक स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित होता है। इसलिए उष्मा सोखने पर पानी की उष्मीय ऊर्जा में उतना बड़ा इज़ाफा नहीं होता जितना कि पारे का। ऐसे में स्वाभाविक है कि तापमान में बढ़ोतरी भी (पानी की बनिस्बत) पारे में ही ज़्यादा होगी।

ऊर्जा संग्रह क्षमता अलग-अलग

यानी सभी पदार्थों में आंतरिक ऊर्जा संग्रह करने की क्षमता एक समान नहीं होती। कोई अपने में ज़्यादा गर्मी सोख पाता है तो कोई कम। लेकिन उष्मा और तापमान का यह रिश्ता एक तरफा नहीं होता। यानी अगर कोई पदार्थ अन्य किसी पदार्थ की तुलना में ज़्यादा गर्मी सोख पाता है तो गर्म होने पर वही पदार्थ अपने सम्पर्क में आई ठंडी वस्तुओं को औरों से ज़्यादा उष्मा भी प्रदान करेगा।

इस बात का दर्द सहित एहसास हमें उस समय भी होता है जब ऊपर से ठीक-ठाक गर्म दिखने वाले आलू के पराठे खाकर हम अपनी जीभ जला बैठते हैं। यह इसलिए कि आलू का काफी बड़ा हिस्सा पानी होता है और पानी में आंतरिक ऊर्जा संग्रह करने की क्षमता काफी ज़्यादा होती है। इसलिए हालांकि पराठे में आलू और आटा एक ही तापमान पर होते हैं पर जीभ के सम्पर्क में आने पर आटे की अपेक्षा आलू ज़्यादा उष्मा जीभ को स्थानांतरित कर देता है। अब

ऐसे में जीभ कैसे न जले! पदार्थों के इस अंतर को हम विशिष्ट उष्मा की अवधारणा के ज़रिए दर्शाते हैं।

हरेक पदार्थ की अपनी एक विशिष्ट उष्मा होती है और वह यह दर्शाती है कि उस पदार्थ का एक इकाई द्रव्यमान, तापमान एक डिग्री बढ़ने पर कितनी ऊर्जा अपने में समेट सकता है। या फिर तापमान एक डिग्री घटने पर कितना ऊर्जा उष्मा के रूप में अपने वातावरण को दे सकता है। मिसाल के तौर पर पानी की विशिष्ट उष्मा है – 1 कैलोरी/ग्राम/डिग्री सेल्सियस। इसका अर्थ यह हुआ कि पानी का एक ग्राम 1 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ाने पर अपने में 1 कैलोरी उष्मा समेट लेता है। दूसरे शब्दों में एक कैलोरी उष्मा, एक ग्राम पानी का तापमान 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ा देती है। वैसे अगर कुछ विरले पदार्थों को छोड़ दिया जाए तो हम पाते हैं कि पानी की विशिष्ट उष्मा अन्य पदार्थों से अधिक है। यही वजह है कि इंजनों को ठंडा रखने के लिए पानी का इस्तेमाल किया जाता है।

विशिष्ट उष्मा को समझने के साथ ही हम पहुंचते हैं चर्चा के अंतिम पडाव पर। वैसे अब तक आपको अंदाज़ा लग गया होगा कि उष्मा की जो तस्वीर हमने पेश की वह किसी एक कलाकार की कृति नहीं है। कई नामी वैज्ञानिकों के दिन-रात एक हुए हैं इसको बनाने में। इस काम में प्रगति अक्सर धीमी और बेतरतीब, कभी-कभार भूल-भुलैया भरी और एक-दो लोगों के लिए तो बेहद कष्टप्रद भी रही है। मसलन, क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मेयर को अपने उष्मा संबंधी विचार लोगों के सामने रखने का क्या सिला मिला होगा? उन्हें ख्याति और सम्मान की बजाए ढेरों ज़िल्लतें उठानी पड़ी। अपने विचारों के कारण वैज्ञानिकों के बीच भी काफी छीछालेदर हुई।

कहते हैं इस मुसीबत के दौर में रिश्तेदारों ने भी उनका साथ न निभाया, उल्टे उन्होंने भी मेयर की भर्त्सना ही की। और-तो-और मानसिक उत्पीड़न का यह सिलसिला एक दो बरस नहीं बल्कि तकरीबन बीस सालों तक चलता रहा, इसमें भी दस साल पागलखाने में बीते।

वस्तुपरकता और सच की दुहाई देने वाला विज्ञान-जगत भी इतना कट्टरपंथी और असहिष्णु हो सकता है – है न अजीब विडंबना!

(अजय शर्मा – एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।)

सवालीराम
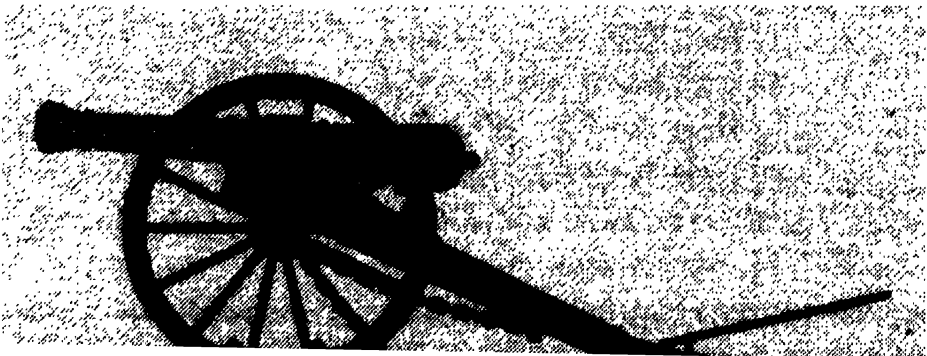
सवालः बादल क्यों गरजता है?

जवाबः बचपन में हमारे दिमाग में भी ऐसे सवाल उठते थे लेकिन बड़े—बूढ़े यह कहकर टाल देते थे कि बादलों की गड़गड़ाहट इसलिए सुनाई देती है क्योंकि एक बुढ़िया ऊपर बैठकर चक्की चला रही है। बस उसी के चलने से यह आवाज़ आ रही है। लेकिन हम तो यह कहकर सवाल को टाल नहीं सकते, है न! तो चलिए, सही जवाब खोजने की कोशिश करते हैं।

अक्सर बारिश के दौरान तेज़ हवाओं, पानी की बूंदों और वातावरण में आवेशित कणों की मौजूदगी के कारण बादलों में आवेश का संतुलन बिगड़ जाता है। किन्हीं कारणों से आमतौर पर ऋणात्मक आवेश बादलों की निम्चली सतह पर (धरती की ओर वाली) इकट्ठा होने लगता है और धनात्मक आवेश बादलों की ऊपरी सतह की ओर चले जाते हैं। बादलों की निचली सतह धरती की सतह पर धन आवेश प्रेरित करती है। और दोनों सतहों के बीच तेज़ विद्युतीय आकर्षण पैदा होता है। यह आकर्षण इतना ज़्यादा होता है कि कई बार बादलों से ऋण आवेश बहुत ज़्यादा मात्रा में धरती की ओर दौड़ पड़ता है। और एक चमक दिखाई देती है।

बिजली चमकते वक्त विद्युत विभव पांच करोड वोल्ट तक पहुंच जाता है और करंट दो लाख एम्पीयर तक। घर पर आने वाली बिजली की लाइन से तुलना करें तो समझ में आता है कि ये संख्याएं कितनी बड़ी हैं। इतनी बड़ी मात्रा में आवेश के कारण इस कौंध के आसपास का तापमान लगभग 15 हज़ार से 30 हज़ार डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है। कौंध के आसपास का तापमान इतना ज़्यादा बढ़ जाने के कारण वहां की हवा अचानक फैलती है जिससे ज़ोरदार विस्फोट होता है, जो हमें गड़गड़ाहट के रूप में सुनाई देता है। यही क्रिया दो बादलों के बीच या फिर एक ही बादल के अंदर भी हो सकती है। जिससे बिजली चमके और वहां की हवा का आयतन अचानक बढ़ जाने के कारण विस्फोट हो और उससे पैदा होने वाली ध्वनि की तरंगों के कारण हमें गड़गड़ाहट सुनाई दे।

यह तो हुई आसमानी बादलों की बातें, यदि हमें यह प्रयोग खुद करके देखना हो कि विपरीत आवेशों के पास-पास आने से कोई आवाज़ आती है या नहीं तो वह भी संभव है। जैसे नायलॉन की कमीज़ उतारते वक्त आपने 'चट-चट' की आवाज़ अक्सर सुनी होगी। अगर अंधेरा हो तो हम आवाज़ के साथ चिंगारियां उड़ते भी देख सकते हैं। इसी तरह चल रहे टी. वी. के पर्दे के पास अंगुली लाने पर भी हल्की-सी 'चट-चट' सुनाई देती है। यहां भी बिल्कुल वही प्रक्रिया हो रही है जो बादलों के बीच हो रही थी, लेकिन बहुत ही छोटे पैमाने पर।

अब एक और बात पर गौर करें कि कभी-कभी हम बादलों के बीच पैदा हुए आकर्षण के कारण चमक तो देख सकते हैं लेकिन गड़गड़ाहट की आवाज़ नहीं सुनाई देती। ऐसा लगता है कि चमक के कुछ देर बाद आवाज़ सुनाई देगी लेकिन आवाज़ नहीं आती। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि यह देखा गया है कि जब बिजली की कौंध हमसे लगभग 25 किलो मीटर से ज़्यादा दूरी पर होती है तो आवाज़ की तरंगे वातावरण में ऊपर की ओर बिखर जाती हैं, हवा की परतों से टकराकर हमारी तरफ नहीं आती। इसलिए हमें चमक तो दिखाई देगी लेकिन आवाज़ नहीं सुनाई देती।

यह सवाल लीलांबर पटेल, पुरुषोत्तम चौधरी एवं संतोष साहू शास. आ. उ. मा. शाला, गोटेगांव, ज़िला नरसिंहपुर ने पूछा था।

इस सवाल का आंशिक सही जवाब हमें अतुल देवलेकर और अमित धीरणा, कक्षा 10वीं, तेग बहादुर सिंह विद्यालय, रतलाम, म. प्र. से प्राप्त हुआ।

इस बार का सवाल पृष्ठ नंबर 24 पर

सूत्र से समीकरण

सुशील जोशी

पिछले अंक में हमने देखा कि किस तरह तत्वों के रासायनिक संकेत खोजे गए – कीमियागिरों से लेकर आधुनिक रसायनशास्त्रियों तक के प्रयास। और इसके बाद कैसे इन तत्वों से मिलकर यौगिकों के सूत्र बने। यह लेख उसी प्रक्रिया की आगे की कड़ी है जिसमें रासायनिक समीकरणों की बात की गई है – कि किस तरह रासायनिक परिवर्तनों को सूत्र के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

सूत्रों को समझ लेने के बाद अब यह संभव हो जाता है कि हम यह देखें कि रासायनिक परिवर्तनों को सूत्रों के माध्यम से कैसे दर्शाएं। रासायनिक परिवर्तन का मतलब यह होता है कि किसी पदार्थ या पदार्थों में उपस्थित परमाणुओं की मात्रा और/या जमावट में परिवर्तन। यदि हम पदार्थों में होने वाले रासायनिक परिवर्तन को सूत्रों के रूप में दर्शाना चाहें तो सबसे पहले हमें क्रियाकारी पदार्थ और परिणामी पदार्थ के अणु सूत्र (मोल सूत्र) पता होने चाहिए। *मसलन,*

हाइड्रोजन + ऑक्सीजन → पानी... (1)

तीर का निशान परिवर्तन की दिशा बतलाता है। तीर के निशान की बाईं ओर क्रियाकारी पदार्थ और दाईं ओर परिणामी पदार्थ लिखे जाते हैं। किसी रासायिनिक परिवर्तन को इस तरह लिखा जाए तो इसे समीकरण कहते हैं। समीकरण (1) शब्द-समीकरण है। इसे सूत्र-समीकरण में तब्दील करें:

$H_2 + O_2 \rightarrow H_2O$ .... (2)
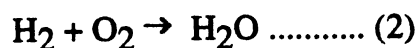
इस समीकरण में तीन सूत्रों का उपयोग हुआ है H_2, O_2 और H_2O हाइड्रोजन व ऑक्सीजन द्विपरमाण्विक

क्या पता चला सूत्र से

रासायनिक पदार्थों को हम रसायन संकेतों की भाषाा में सूत्रों के रूप में व्यक्त करते हैं। किसी भी पदार्थ का सूत्र हमें निम्नलिखित जानकारी देता है:

1. उस पदार्थ में मौजूद तत्व,
2. पदार्थ के एक अणु में प्रत्येक तत्व के परमाणुओं की संख्या,
3. पदार्थ का अणुभार/मोल भार/सूत्र भार।

सूत्र लिखने का व्याकरण कुछ इस तरह होता है:

1. प्रत्येक सूत्र में उस पदार्थ में मौजूद तत्वों के संकेत लिखे जाते हैं। आमतौर पर ज़्यादा धनात्मक तत्व का संकेत पहले और ऋणात्मक तत्वों के संकेत बाद में लिखे जाते हैं। (ऋणात्मक-धनात्मक तत्वों की जानकारी की बात फिर कभी।)
2. पदार्थ के एक अणु में मौजूद किसी तत्व के परमाणुओं की संख्या उस तत्व के संकेत के तुरन्त बाद थोड़ी नीचे लिखी जाती है (subscript)। यदि किसी तत्व के बाद कोई संख्या न लिखी हो तो माना जाता है कि उस तत्व का एक ही परमाणु मौजूद है।
3. किसी पदार्थ का सूत्र उसके एक अणु का प्रतीक है, इसे पदार्थ के एक मोल का प्रतीक भी माना जाता है।

   (एक मोल: एक मोल किसी भी पदार्थ की वह मात्रा है जिसमें उस पदार्थ के

गैसें हैं यानी ये गैसें ऐसे अणुओं के रूप में रहती हैं। सूत्रों के व्याकरण के मुताबिक H_2, O_2 और H_2O क्रमशः हाइड्रोजन, ऑक्सीजन व पानी का एक-एक मोल दर्शाते हैं। हाइड्रोजन का एक मोल 2 ग्राम, ऑक्सीजन का एक मोल 32 ग्राम तथा पानी का एक मोल 18 ग्राम होता है। इस आधार पर समीकरण (2) को यूं लिख सकते हैं:

$H_2 + O_2 \rightarrow H_2O$

2 ग्राम + 32 ग्राम → 18 ग्राम.... (3)
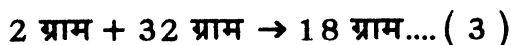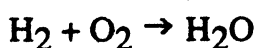
यह स्थिति तो संहति के संरक्षण के नियम से मेल नहीं खाती। मतलब यह समीकरण सही नहीं है। यानी इसमें क्रियाकारी पदार्थ और परिणामी पदार्थों की पहचान तो सही है मगर उनकी मात्राओं में संतुलन नहीं है। ऐसी समीकरण को असंतुलित समीकरण कहते हैं। इसे तीन तरह से संतुलित किया जा सकता है :

$H_2 + O \rightarrow H_2O$ .... (4)

$H_2 + O_2 \rightarrow H_2O_2$ ...... (5)

$2H_2 + O_2 \rightarrow 2H_2O$...... (6)
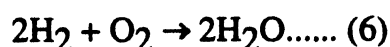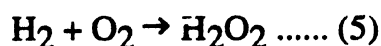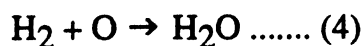
6.023 ×10 परमाणु या अणु हों। दूसरे शब्दों में मोल पदार्थ की वह मात्रा है, जिसमें उतने ही परमाणु/अणु हों जितने 12 ग्राम कार्बन में होते हैं। यानी किसी पदार्थ के एक मोल का भार उसमें मौजूद सभी तत्वों के परमाणुभार के योग के बराबर होता है।)

सूत्र निकालने का तरीका

1. सबसे पहले यह पता लगाया जाता है कि उस पदार्थ में कौन-कौन से तत्व हैं तथा प्रत्येक तत्व का प्रतिशत क्या है।

   मसलन विटामिन 'सी' का सूत्र निकालने के लिए सबसे पहले हम यह पता करते हैं कि उसमें तत्वों का प्रतिशत निम्नानुसार है:

   कार्बन – 40.8 %
   हाइड्रोजन – 4.5 %
   ऑक्सीजन – 54.5 %

2. अब उस पदार्थ का अणु भार पता लगाना होता है। विटामिन 'सी' का अणुभार 176 है।
3. अब हम यह पता लगा सकते हैं कि विटामिन 'सी' के 1 मोल में कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन की मात्राएं कितनी-कितनी होंगी। मसलनः

चूंकि 100 ग्राम विटामिन 'सी' में कार्बन 40.8 ग्राम

इसलिए 176 ग्राम 1 मोल विटामिन 'सी' में कार्बन $= \frac{40.8 \times 176}{100} = 71.8$ *ग्राम*

इसी प्रकार से हाइड्रोजन 7.92 ग्राम और ऑक्सीजन 95.9 ग्राम आती है। इन परिणामों को निम्नानुसार लिख लें।

1 मोल विटामिन 'सी' में

C – 71.8 ग्राम
H – 7.9 ग्राम
O – 95.9 ग्राम

(शेष हिस्सा अगले पेज पर)

विचार कीजिए कि इनमें से कौन-सा तरीका सही होगा। ध्यान देने की बात यह है कि कौन-सी समीकरण में पदार्थों के सूत्र सही हैं।

समीकरण (4) में ऑक्सीजन का सूत्र O लिखा गया है जो सही नहीं है।

समीकरण (5) में पानी का सूत्र H_2O_2 हो गया है जो सही नहीं है। (वास्तव में H_2O_2 एक सर्वथा भिन्न पदार्थ हाइड्रोजन पेरॉक्साइड का सूत्र है।)

4. अब हमें यह पता लगाना है कि विटामिन 'सी' में प्रत्येक तत्व के कितने परमाणु हैं। करना यह होगा कि विटामिन 'सी' के एक 1 मोल में उपस्थित तत्व के भार में उसके परमाणु भार का भाग देना होगा।

$$C \text{ के परमाणुओं की संख्या} = \frac{71.9}{12} = 5.99 \simeq 6$$

$$H \text{ के परमाणुओं की संख्या} = \frac{7.9}{1} = 7.9 \simeq 8$$

$$O \text{ के परमाणुओं की संख्या} = \frac{95.9}{16} = 5.99 \simeq 6$$

चूंकि परमाणु आंशिक रूप में नहीं पाए जाते इसलिए उपरोक्त संख्याओं को निकटतम पूर्ण संख्याओं में परिवर्तित कर लेते हैं।

5. तो विटामिन 'सी' का सूत्र हुआ $C_6H_8O_6$

कुछ अभ्यास

1. एक पदार्थ में 26.56 प्रतिशत पौटेशियम (K, 40), 35.41 प्रतिशत क्रोमियम (Cr, 52) और 38.03 प्रतिशत ऑक्सीजन (O, 16) पाई गई। यदि इस पदार्थ का अणुभार 296 है, तो इसका सूत्र निकालिए।

2. ब्रुफेन नामक दवाई का मुख्य घटक इबुप्रोफेन है। इसका मोल भार 206 ग्राम है। इसकी एक गोली में 500 मिली ग्राम दवाई होती है। बताइए इस गोली में इबुप्रोफेन के कितने मोल हैं। और एक गोली में इबुप्रोफेन के कितने अणु हैं।

   इबुप्रोफेन में विभिन्न तत्वों का प्रतिशत निम्नानुसार है:

   C (12) = 75.7 %

   H (1) = 8.7 %

   O (16) = 15.5 %

   इसका अणु सूत्र ज्ञात कीजिए

समीकरण (6) में सभी सूत्र सही हैं और मात्राओं में भी संतुलन है। यही संतुलित समीकरण है।
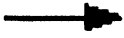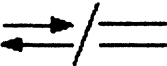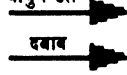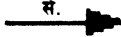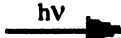
वास्तविक प्रयोगों से भी पता चलता है कि 2 ग्राम हाइड्रोजन 16 ग्राम ऑक्सीजन से क्रिया करके 18 ग्राम पानी बनाती है। यानी 1 मोल H_2 और आधा मोल O_2 की क्रिया से 1 मोल पानी बनता है:

$$H_2 + 1/2\, O_2 \rightarrow H_2O \text{ .... (7)}$$
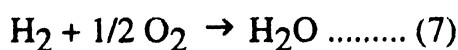
कृपया ध्यान दें कि जब हम किसी पदार्थ के सूत्र को एक अणु का द्योतक

मानते हैं तो $1/2\ O_2$ नहीं लिख सकते। मगर जब सूत्र को 1 मोल का द्योतक मानते हैं तो बखूबी $1/2\ O_2$ लिख सकते हैं। समीकरण (7) को निम्नानुसार भी लिख सकते हैं:

$$2H_2 + O_2 \rightarrow 2H_2O \text{ .... } (8)$$
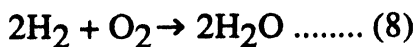
यहां रुककर व्याकरण पर थोड़ा विचार करना अनुचित न होगा। किसी भी पदार्थ का रासायनिक सूत्र उसके एक मोल का द्योतक होता है। यदि आप उसी पदार्थ के एकाधिक मोल दर्शाना चाहें तो उपसर्ग के रूप में मोल संख्या लिखी जाती है। जैसे H_2S और $3\ H_2S$ क्रमशः हाइड्रोजन सल्फाइड के 1 व 3 मोल दर्शाते हैं।

एक बात पर और ध्यान दीजिए। यदि किसी रासायनिक परिवर्तन की समीकरण लिखी जा सकती है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि वह क्रिया हो ही जाएगी। अब आइए

तत्वों का प्रतिशत निकालना

कार्बनिक पदार्थों में तत्वों का प्रतिशत निकालना अपेक्षाकृत आसान है। आमतौर पर कार्बनिक पदार्थ कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन व नाइट्रोजन के मेल से बनते हैं। कभी-कभार गंधक, क्लोरीन, फॉस्फोरस आदि तत्व भी जुड़े होते हैं।

यदि पदार्थ में सिर्फ कार्बन, हाइड्रोजन या कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन हैं तो इसमें तत्वों का प्रतिशत निकालने का तरीका यह है कि इसकी एक ज्ञात मात्रा को शुद्ध, शुष्क ऑक्सीजन में जलाया जाए।

इस क्रिया में कार्बन डाईऑक्साइड को कास्टिक सोड़ा के घोल में सोख लिया जाता है। और पानी को किसी अन्य पदार्थ में जो पानी के प्रति खूब जुड़ाव रखता हो। इस पदार्थ व कास्टिक सोड़ा के घोल को भी पहले से तौलकर रखा जाता है ताकि हमें पता चल जाए कि पदार्थ की एक निश्चित मात्रा से कितनी कार्बन डाइऑक्साइड व कितना पानी बना।

हम यह तो जानते ही हैं कि 44 ग्राम Co_2 में 1 मोल कार्बन है और 18 ग्राम पानी में 2 मोल हाइड्रोजन है। तो अब कार्बन व हाइड्रोजन का प्रतिशत निकाला जा सकता है। शेष ऑक्सीजन है।

अकार्बनिक पदार्थों में तत्वों का प्रतिशत निकालना कहीं मुश्किल काम है। पहले पदार्थ का गुणात्मक विश्लेषण करके यह पता लगाना होगा कि उसमें कौन-कौन से तत्व हैं। उसके बाद उनकी मात्राओं को नापना होगा। इसके लिए ज्ञात रासायनिक क्रियाओं का सहारा लिया जाता है। अब तो ऐसे विशिष्ट अभिकारक (रीएजेंट) उपलब्ध हैं। परन्तु एक अच्छी बात यह है कि अकार्बनिक पदार्थ उस कदर अनगिनत नहीं हैं जैसे कार्बनिक पदार्थ हैं।
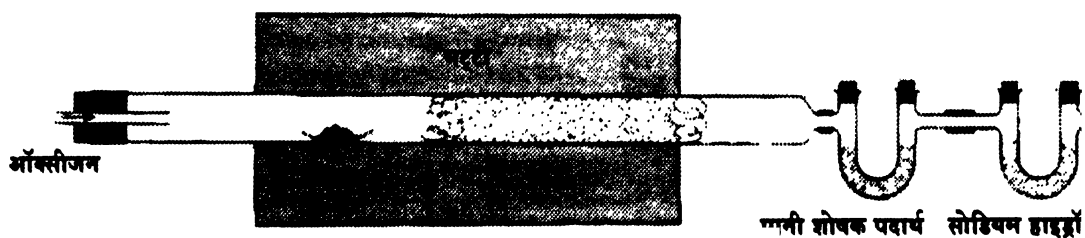
समीकरण लिखने के कुछ और उदाहरण देखें।

बैंज़ीन + ऑक्सीजन → कार्बन डाइऑक्साइड + पानी .... (9)

$C_6H_6 + O_2 \rightarrow CO_2 + H_2O$ ..... (10)

अब इसे संतुलित करें ......

सबसे पहले कार्बन के परमाणुओं की संख्या देखें। तीर के बाईं ओर 6 कार्बन हैं जबकि दाईं ओर मात्र एक। तो सबसे पहले दाईं और भी 6 कार्बन

कर दिया जाए...

$C_6H_6 + O_2 \rightarrow 6CO_2 + H_2O$ .....(11)

अब हाइड्रोजन को देखें। बाईं ओर 6 हैं और दाईं तरफ मात्र 2, तो इसे भी संतुलित करें:

$C_6H_6 + O_2 \rightarrow 6CO_2 + 3H_2O$... (12)

और अंत में ऑक्सीजन। बाईं ओर मात्र दो हैं जबकि दाईं ओर 15 हैं। तो इस तरह करें:

$C_6H_6 + 15/2O_2 \rightarrow 6CO_2 + 3H_2O$ .... (13)
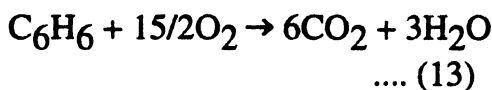
इसका अर्थ यह हुआ कि 1 मोल बैंज़ीन और 7.5 मोल O_2 क्रिया करके 6 मोल CO_2 और 3 मोल पानी बनाते हैं। यह एक संतुलित समीकरण है। मगर आमतौर पर समीकरण में आंशिक मोल नहीं लिखे जाते।

इसलिए सारे 'मोल उपसर्गों' को पूर्णांक में बदलेंगे। इसके लिए पूरी समीकरण को 2 से गुणा करना होगा:

$2C_6H_6 + 15O_2 \rightarrow 12CO_2 + 6H_2O$ ... (14)
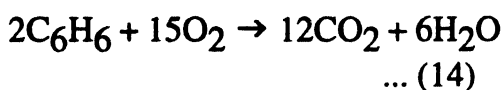
अब नीचे लिखे समीकरणों को संतुलित करने का अभ्यास कीजिए:

$CH_4 + O_2 \rightarrow CO_2 + H_2O$

$C + O_2 \rightarrow CO$

$H_2O + Fe \rightarrow Fe_3O_4 + H_2$

$Zn + HCl \rightarrow ZnCl_2 + H_2$

$N_2 + H_2 \rightarrow NH_3$

अभी हमने काफी सरल पदार्थों के सूत्रों व सामान्य क्रियाओं की समीकरणों पर ही विचार किया है। बहरहाल यह तो स्पष्ट ही है कि सूत्र व समीकरण बहुत ही सशक्त भाषा के अंग हैं। इस भाषा के नियमों में दक्षता काफी अभ्यास से ही संभव है। प्रत्येक सूत्र के पीछे काफी रासायनिक परिश्रम लगता है।

परन्तु एक बार सूत्र ज्ञात हों, तो उस पदार्थ की रासायनिक पहचान में मदद मिलती है। मज़ेदार बात यह है कि किसी पदार्थ का सूत्र ज्ञात करने के लिए उसका रासायनिक विश्लेषण करना होता है मगर एक बार सूत्र ज्ञात हो जाए तो आगे उस पदार्थ की क्रियाओं आदि का पूर्वानुमान, गणना वगैरह संभव हो जाते हैं। किसी रासायनिक क्रिया की समीकरण लिख लेने के बाद उस क्रिया को नियंत्रित ढंग से कर पाना संभव हो जाता है। खासतौर से जब हम कार्बनिक रसायन के क्षेत्र में पहुंचते हैं तो वहां अणु सूत्र से भी ज़्यादा महत्व रचना सूत्र का हो जाता है। रचना सूत्र ज्ञात करना कार्बनिक रसायनज्ञों का एक प्रमुख काम है। जब तक यह सूत्र पता न हो, तब तक उस पदार्थ को प्रयोगशाला में बनाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सूत्र के आधार पर ही पदार्थों के गुणों का पूर्वानुमान किया जाता है। सूत्र तब मात्र एक सांकेतिक भाषा न रहकर रसायन शास्त्र समझने का एक माध्यम बन जाता है।

(सुशील जोशी – होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में सक्रिय; विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों में सतत लेखन।)

ज़रा सिर तो खुजलाइए

क्यों नहीं कटी बर्फ
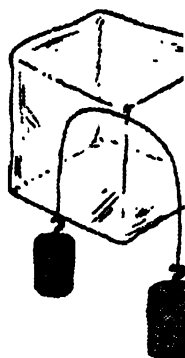
सवाल था कि तार के नीचे की बर्फ तो पिघल रही है और तार बर्फ को चीरता हुआ नीचे जा रहा है लेकिन ऊपर की बर्फ फिर से जम जाती है, ऐसा क्यों?

कुल जमा, दो बिन्दुओं पर इसका जवाब टिका हुआ है – पहला तो दबाव और दूसरा बर्फ की संरचना।

आमतौर पर ठोस अवस्था में पदार्थ का आयतन सिकुड़ता है बनिस्बत द्रव या गैसीय अवस्था के। आयतन सिकुड़ने का मतलब है कि पदार्थ के अणु और पास-पास आ गए हैं। अब अगर ठोस पदार्थ पर बाहर से दबाव बढ़ाया जाए और साथ ही इसे पिघलाने की कोशिश की जाए तो उसका गलनांक बढ़ जाता है। यानी कि सामान्य अवस्था में ठोस पदार्थ का जो गलनांक होता है, सामान्यतः दबाव बढ़ाने पर पदार्थ उससे ऊंचे तापमान पर पिघलना शुरू करता है।

लेकिन बर्फ में इससे बिल्कुल उल्टा होता है; पानी जब जम कर बर्फ में तब्दील होता है तो उसका आयतन बढ़ जाता है यानी पानी की तुलना में बर्फ अधिक जगह घेरती है। ऐसा इसलिए क्योंकि बर्फ की अवस्था में पानी के अणु खुली-खुली-सी संरचना बना लेते हैं जिनके बीच काफी जगह होती है। इस अवस्था में अणु जिस बल से एक-दूसरे से बंधे रहते हैं वो काफी कमज़ोर होता है। इसलिए दबाव डालने पर बर्फ की कमज़ोर खुली-सी संरचना आसानी से टूट जाती है और बर्फ पिघल जाती है। इसका मतलब है कि अधिक दबाव की स्थिति में बर्फ का गलनांक कम हो गया, बनिस्बत सामान्य स्थिति के।

अब ऊपर वाले सवाल पर चलते हैं: तार के बिल्कुल नीचे की बर्फ की सतह पर बाहरी दबाव खूब बढ़ गया, उस हिस्से में दबाव बढ़ने से बर्फ का गलनांक कम हुआ, इसलिए शून्य डिग्री सेल्सियस से कम तापमान पर भी बर्फ पिघली और तार उस पानी में से गुज़रकर नीचे आ गया। तार के नीचे चले जाने से बाहरी दबाव हटते ही तार के ऊपर का शून्य डिग्री सेल्सियस का पानी तुरंत फिर से जम गया। इस तरह तार भी नीचे जाता रहा और बर्फ भी नहीं कटी।

ऐसा ही एक और प्रयोग करके देखा जा सकता है। बर्फ के दो टुकड़ों को पास-पास लाकर, एक-दूसरे से चिपकाकर ज़ोर से दबाइए। जहां दोनो टुकड़े मिलते हैं वहां पानी की एक पर्त दिखती है न? और थोड़ी ही देर में ये टुकड़े आपस में जुड़ गए। यह भी उसी वजह से हुआ। दबाव बढ़ने से दोनों टुकड़ों की एक-दूसरे से स्पर्श कर रही सतह गलनांक कम होने से पिघल गई और पानी की पर्त बन गई। दबाव हटाने पर पानी फिर से जम गया क्योंकि आसपास की बर्फ का तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस ही था। और इसी पानी ने दोनों बर्फ के टुकड़ों को जोड़ दिया।
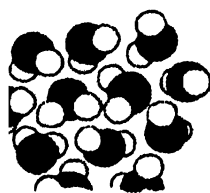
पानी के अणु
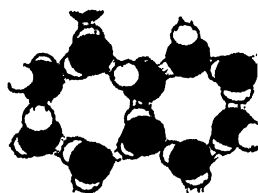
बर्फ के अणु

पुस्तक अंश

बच्चे कैसे सीखते हैं

● जॉन होल्ट

अनुवादः सुशील जोशी

मैं अपने एक दोस्त के घर की छत पर बैठा हूं। पास में लिज़ा है। सोलह महीने की होशियार और दिलेर बच्ची। उसने एक बहुत ही विविधतापूर्ण छद्म बोली ईजाद की है जिसे वह सारे समय इस्तेमाल करती है। कई ध्वनियां वह बार-बार बोलती है गोया उन ध्वनियों का कुछ अर्थ हो। उसे चीज़ों को छूना व हैण्डल करना अच्छा लगता है और वह बहुत हस्तकुशल है, वह पेंच व इसी तरह की छोटी चीज़ों को उनके लिए बनाए गए छेद में फिट कर सकती है। क्या यह संभव है कि छोटे बच्चे उतने अकुशल नहीं होते जितना हम सोचते हैं?

विज्ञान और मानव के इस दूषित नज़रिए की बात को यहीं छोड़ते हुए आइए अब कुछ बातें अच्छे विज्ञान की करें। खासकर अमेरिकी जीववैज्ञानिक मिलिसेन्ट वॉशबर्न शिन के काम पर गौर किया जाए, जिनकी एक किताब "बायोग्राफी ऑफ ए बेबी" (एक शिशु की जीवनी) हॉफटन मिफ्लिन ने सन् 1900 में प्रकाशित की थी और जिसे अर्नो प्रेस ने कुछ वर्ष पहले फिर से छापा था। यह शिशु उनकी (मिलिसेन्ट की) भतीजी थी। किताब में वह इस कदर सजीव हो उठी है कि यह विश्वास करना मुश्किल है कि आज वह एक शिशु या बच्ची नहीं बल्कि अस्सी बरस से ज़्यादा की महिला है। यह किताब उन्होंने क्यों व कैसे लिखी, इसके बारे में मिलिसेन्ट शिन का कहना है :

> बच्चों को लेकर किए गए अधिकतर अध्ययनों का संबंध देर बचपन से यानी स्कूली वर्षों के बच्चों से होता है। प्रायः सभी अध्ययन सांख्यिकीय होते हैं और इनमें किसी एक बच्चे पर ध्यान नहीं दिया जाता। मेरा अपना अध्ययन शैशव से संबंधित रहा है और अध्ययन का तरीका जीवनीनुमा रहा, यानी शिशु के विकास को दिन-ब-दिन देखना और रिकॉर्ड करना।
>
> मुझसे अक्सर यह पूछा जाता है कि क्या इस तरह से प्राप्त परिणाम भ्रामक नहीं होंगे, क्योंकि हर बच्चा अन्य बच्चों से बहुत भिन्न होता है। बेशक, एक बच्चे के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने में बहुत

सावधानी बरतनी चाहिए। परन्तु कई बातों में सारे शिशु एक जैसे होते हैं और आपको यह अहसास आसानी से हो जाता है कि वे बातें कौन-सी हैं। शैशव मूलतः व्यापक, सामान्य क्षमताओं के विकास में गुजरता है; बचपन की तुलना में इस समय निजी भिन्नताएं कम महत्वपूर्ण होती हैं। और बाल अध्ययन के जीवनीनुमा तरीके का एक अतुलनीय लाभ यह है कि इसमें विकास की प्रक्रिया उजागर होती है, एक मुकाम में से दूसरा मुकाम उभरता नज़र आता है और यह भी पता चलता है कि ये परिवर्तन किन चरणों के माध्यम से होते हैं। तुलनात्मक सांख्यिकी आंकड़ों से यह कदापि सम्भव नहीं है। मान लीजिए मैं यह पता लगा भी लूं कि एक हज़ार शिशु औसतन 46 हफ्ते और 2 दिन की उम्र में खड़े होना सीख जाते हैं। इससे मुझे मानव विकास के एक मुकाम के तौर पर खड़े होने के बारे में वे सारी अहम बातें उतनी पता नहीं चलेंगी, जितनी कि एक शिशु को अपने नन्हें तलुओं पर संतुलन बनाते ध्यान पूर्वक देखने से पता चलेगी।

मुझसे अक्सर यह पूछा जाता है कि मुझे शिशु जीवनी की रचना का काम कैसे सूझा। अतः इस सम्बंध में दो शब्द लाज़िमी हैं। मैंने यह काम किसी वैज्ञानिक मकसद से नहीं किया है क्योंकि मैं अपने आपको वैज्ञानिक महत्व के अवलोकन करने में सक्षम नहीं पाती। परन्तु मेरी बरसों की लालसा थी कि मुझे एक नवजात शिशु की अपाहिज बेबसी में से मानव क्षमताओं के आश्चर्यजनक विकास को देखने का अवसर मिले ताकि मैं विकास के इस मनमोहक नाटक को रोजाना, हर पल देख सकूं और अपने आनन्द व जानकारी के लिए इसे यथासम्भव समझने की कोशिश कर सकूं .....।

शिशु जीवनी को लेकर एक सवाल मुझसे सैंकड़ों बार पूछा गया है: "क्या इससे बच्चों का थोड़ा नुकसान नहीं होता? क्या वे नर्वस नहीं हो जाते? कहीं इसके कारण वे झेंपू तो नहीं हो जाते?" पहले तो मुझे यह थोड़ी अजीब-सी शंका लगती थी – ग़ोया लोग यह मान रहे हैं कि बच्चों का अवलोकन करने का मतलब यही है कि आप उन्हें कुछ करेंगे। परन्तु मुझे इस बात में कोई शक नहीं कि यदि इस काम को फूहड़ ढंग से किया जाए तो बच्चे का नुकसान हो सकता है। हज़ारों पालक साल हर रोज़ अपने बच्चों के सामने उनके बारे में किस्से सुनाते रहते हैं। यदि ऐसा कोई पालक बच्चों का अध्येता बन गया तो कहना मुश्किल है कि वह बच्चे के दिमाग का खुला विच्छेदन करने के लिए क्या कुछ नहीं कर डालेगा। वह उस नन्हें बच्चे से खुद (बच्चे) के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछेगा और

उसके विचारों और भावनाओं के साथ प्रयोग करेगा। परन्तु ऐसा अवलोकन बच्चे के लिए बुरा होने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से निरर्थक भी है: जिस बात का अवलोकन किया जा रहा है, यदि उसकी सादगी और सहजता खत्म हो जाए, तो उस अवलोकन का महत्व भी तत्काल समाप्त हो जाता है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि कोई भी सक्षम अवलोकन-कर्त्ता बच्चे के साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ नहीं करता। .... यदि मैं खिड़की में बैठकर नीचे खेलती अपनी भतीजी की बालसुलभ बातों को अपनी पेंसिल से कैद करती हूं – और बाद में यदि वह (भतीजी) बिगड़ जाती है, तो इसका दोष मेरी खामोश नोटबुक को नहीं, किसी अन्य कारक को दिया जाना चाहिए।

1980 में एक किताब छपी थी – ग्लेण्डा बिसे (Glenda Bissex) की Gnys at Wrk (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1980)। इसे पढ़कर जिस तरह मैं आनन्दित हुआ, मुझे यकीन है कि मिलिसेन्ट शिन को भी आनन्द मिलता। भूमिका के शुरू में ही ग्लेण्डा बिसे लिखती हैं:

यह एक बच्चे द्वारा, पांच वर्ष की उम्र में साक्षरता से शुरू करके ग्यारह वर्ष की उम्र तक, पढ़ना-लिखना सीखने का ब्यौरा है। जब मैंने अपने नन्हें बेटे के विकास के बारे में नोट्स लेना शुरू किए, तब मुझे नहीं पता था कि मैं 'अनुसंधान' के लिए 'आंकड़े' इकट्ठे कर रही हूं। मैं तो एक मां थी जिसे चीज़ें लिख डालने का चस्का था। हार्वर्ड में कोर्टनी कैस्डेन के बाल-भाषा पाठ्यक्रम के अपने अनुभव की वजह से मुझे अपने बेटे के भाषा संबंधी विकास में खास दिलचस्पी थी, और अंग्रेज़ी की एक शिक्षक होने के नाते हाल ही में मुझे पठन के बारे में पुनर्प्रशिक्षित किया गया था, इसलिए मैं बेटे को पढ़ना सीखते हुए देखना चाहती थी। जब पॉल ने हिज्जे (स्पेलिंग) करना शुरू किया तो मैं मुग्ध और अचंभित रह गई। कुछ समय बाद ही मुझे चार्ल्स रीड के उस अनुसंधान के बारे में पता चला जो उन्होंने बच्चों द्वारा अविष्कृत (कल्पित) हिज्जों पर किया था। उनके काम से उत्साहित होकर मैंने अपने नोट्स को 'शोध सामग्री' के रूप में देखना शुरू किया।

मैं उम्मीद करती हूं कि इस अध्ययन से, अन्य बच्चों पर 'लागू' किए जा सकने वाले सामान्य सिद्धांतों की बजाए, सीखने की क्रिया में रत व्यक्ति (बच्चे) को देखने की प्रेरणा प्राप्त होगी और यकीन मानिए इस क्रिया में भरपूर नाटकीयता व एक्शन नज़र आएगा।

शुरूआत में तो पॉल बिल्कुल बेखबर था और मेरे टेप रिकॉर्डर और

नोट बुक के महत्व से अनभिज्ञ था। छह साल की उम्र में जब वह पहली बार सचेत हुआ, तो उसे मेरी दिलचस्पी और तवज्जो को देखकर अच्छा लगा । सात साल की उम्र तक वह खुद अपनी प्रगति का प्रेक्षक बन चुका था। जब मैंने पहले साल की सामग्री का प्रारम्भिक विश्लेषण करने के लिए पॉल के शुरूआती लेखन को डेस्क पर फैलाया तो मेरे साथ उसे भी उन्हें देखने में मज़ा आता था और वह उन्हें पढ़ने की कोशिश करता था। अब उसे ये गुप्त संकेतों जैसे लगते थे और उनका खुलासा करना एक चुनौती। इनमें उसकी प्रगति साफ झलकती थी क्योंकि उसी ने इन्हें लिखा था। इससे उसे उपलब्धि का एक अहसास भी मिला। एक बार उसने फरमाया, "मैं देख सकता हूं कि उस समय मुझे अनुच्चरित (अबोले) का ज्ञान नहीं था।" इस समय तक पॉल ने यह देख लिया था कि मैंने हिज्जों के बारे में उसके द्वारा पूछा गया एक प्रश्न नोट किया है। मैंने उससे पूछा कि ऐसे नोट करने के बारे में उसे क्या लगता है। उसने कहा, "मैं जानता हूं कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तब मैं देख सकूंगा कि जब मैं छोटा था तब मैंने क्या पूछा था।"

आठ साल की उम्र में वह इतना सचेत हो गया था कि साफ नज़र आने वाले अवलोकन कार्य और नोट लेने को लेकर ऐतराज़ करे। अब मैंने वैसा करना बन्द कर दिया। एक दिन जब मैं उसकी पार्श्वता को लेकर कुछ अनौपचारिक अवलोकन कर रही थी, तब उसने मेरी नोट बुक पर नज़र डाली कि मैं क्या लिख रही हूं और कहा, "मैं जो भी करूं उसे तुम लिखो, तो मुझे अच्छा नहीं लगता।" पॉल अभी भी (अपने व्यक्तिगत लेखन के अलावा) अपना लिखा सब कुछ मुझे दिखाता था। मैं उस सबको कितना महत्व देती हूं यह वह जानता था। नौ साल की उम्र में तो वह इस अनुसंधान में भागीदार बन गया। उसकी भी दिलचस्पी यह सोचने में हो गई कि एक समय पर उसने जैसा लिखा या पढ़ा था वैसा क्यों किया था। एक बार जब मैंने स्फुट रूप से यह अनुमान लगाया कि शुरूआत में वह ज़ोर से बोल-बोलकर इसलिए पढ़ता था कि वयस्कों की प्रतिक्रिया मिल सके और वे उसमें सुधार करें, तो उसकी दलील थी कि वह बोल-बोलकर इसलिए पढ़ता था क्योंकि उसे ध्वनि सुनने की ज़रूरत थी ताकि उसे पता रहे कि वे सही हैं या नहीं।

यह अध्ययन हमारे बीच एक-दूसरे के काम में दिलचस्पी और पॉल के शुरूआती बचपन व उसके विकास में एक साझा आनन्द का विशेष बन्धन बन गया है। मैं अपने बेटे में कुछ ऐसे गुणों को देख पाई हूं जो शायद इस अध्ययन की आंखों के बगैर कभी न देख पाती।

1960 में जब मैंने पहले-पहल लिज़ा के बारे में नोट्स रखना शुरू किया था, तो मैंने सोचा न था कि मैं आंकड़े इकट्ठे कर रहा हूं या अनुसंधान कर रहा हूं या कोई किताब लिखने की तैयारी कर रहा हूं। मैं तो एक मुग्ध व आनन्दित वयस्क था जिसे (श्रीमती बिसे की तरह) चीज़ों को लिखकर रखने का चस्का था। यह लिखना दोस्तों को पत्र के रूप में या खुद के लिए नोट्स के रूप में होता था, ज़िनकी नकल कभी-कभार मैं अपने दोस्तों को भेज देता था। मेरे मन में ऐसा कोई खयाल नहीं था कि इन चिट्ठियों और नोट्स की किताब बनाऊंगा। दरअसल जब मेरे दोस्त पेशी ह्यूजेस ने पहली बार सुझाव दिया कि ऐसा हो सकता है तो मुझे यह बात नामुमकिन और बेतुकी लगी थी।

किशोरों व दस वर्षीय बच्चों के एक शिक्षक के रूप में तथा मेरी बहन और दोस्तों के कई बच्चों के मित्र के रूप में अपने अनुभव की बदौलत मुझे ऐसा लगने लगा था और मुझे उम्मीद थी कि बहुत छोटे बच्चों से मैं बच्चों के सीखने के बारे में कुछ रोचक व महत्वपूर्ण बातें सीख सकूंगा। उसी साल बसन्त ऋतु की बात है: जिस स्कूल में मैं पांचवीं कक्षा को पढ़ाता था, वहां सुबह स्कूल शुरू होने से पहले का अधिक से अधिक समय मैं नर्सरी स्कूल के तीन वर्षीय बच्चों के साथ बिताया करता था। परन्तु लिज़ा तो और भी छोटी, सिर्फ डेढ़ साल की थी। इतने छोटे बच्चे के साथ इतना समय बिताने का मौका मुझे पहले कभी नहीं मिला था। लिहाज़ा वह जो कुछ भी करती उसमें मुझे बेहद दिलचस्पी थी। उसके हुनर, धैर्य, उद्यम, अकलमन्दी और संजीदगी को देखकर मेरा विस्मय व आनन्द हर रोज़ और बढ़ जाता। मैं उसे गौर से देखता तो उस नज़र से नहीं जैसे कोई सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखे नमूने को देखता है। मैं उसे उसी भावना से देखता था जैसे हर गर्मी में हर रोज़ वादियों के पार बर्फ से ढके कोलेरेडो पर्वत को देखता हूं – दिलचस्पी, आनन्द, उत्साह, विस्मय और अचरज की मिली-जुली भावना। मैं एक चमत्कार को देख रहा था और एक सीमित अर्थ में उसमें भागीदार भी था।

9 अगस्त, 1960

मैं अपने एक दोस्त के घर की छत पर बैठा हूं। पास में लिज़ा है। सोलह महीने की होशियार और दिलेर बच्ची। उसने एक बहुत ही विविधतापूर्ण छद्म बोली ईजाद की है जिसे वह सारे समय इस्तेमाल करती है। कई ध्वनियां वह बार-बार बोलती है गोया उन ध्वनियों का कुछ अर्थ हो। उसे चीज़ों को छूना व हैण्डल करना अच्छा लगता है और वह बहुत हस्तकुशल है, वह पेंच व इसी तरह की छोटी चीज़ों को उनके लिए बनाए गए छेद में फिट कर सकती है। क्या यह

संभव है कि छोटे बच्चे उतने अकुशल नहीं होते जितना हम सोचते हैं?

मेरी जेब में से बॉल पॉइन्ट पेन लेना, उसका ढक्कन निकालना और फिर से लगाना लिज़ा का मनपसन्द खेल है। इसमें हुनर लगता है। वह इस खेल से कभी नहीं उबती। जैसे ही उसे मेरी जेब में पेन दिखता है, वह जता देती है कि पेन उसे चाहिए। आप उसे टरका भी नहीं सकते। वह बहुत ज़िद्दी है और यदि मैं झूठमूठ यह बहाना करूं कि मुझे समझ ही नहीं आया है कि उसे क्या चाहिए, तो वह हंगामा खड़ा कर देगी। जब पता हो कि मुझे पेन की ज़रूरत पड़ने वाली है तो एकमात्र कारगर चाल यह होती है कि मैं अपनी जेब में एक अतिरिक्त पेन छिपाकर रख लूं।

एक दिन वह पियानो बजा रही थी। दोनों हाथ जहां-तहां मार रही थी। उस मशीन से खेलते हुए और इतनी दिलचस्प आवाज़ें निकालकर वह बहुत खुश थी। मैं यह जानने को बहुत उत्सुक था कि क्या वह मेरी नकल करेगी। अतः मैंने अपनी तर्जनी उंगली को पियानो के कुंजीपटल पर इधर-से-उधर फिराया। उसने देखा और ठीक वैसा ही किया।

24 जुलाई, 1961

आज सुबह लिज़ा ने झुककर एक गुब्बारा उठाना चाहा। जब वह झुकी, वैसे ही दरवाज़े से हवा का झोंका आया जिसने गुब्बारे को फर्श पर आगे धकेल दिया। लिज़ा ने उसे जाते देखा। जब वह रुक गया, तो वह उसके पास गई और फूंक मारी, गोया उसे और आगे सरकाना चाहती हो। मुझे अचरज हुआ। क्या इतने छोटे बच्चे, चीज़ों को हिलाने की हवा की क्षमता और फूंक मारकर चीज़ों को हिलाने की अपनी क्षमता के बीच की कड़ी जोड़ सकते हैं? लगता तो यही है।

यह मुझे उस किस्म के अमूर्त चिन्तन का एक उम्दा उदाहरण लगता है, जिसके बारे में कई लोग कहते हैं कि वैसे अमूर्त चिन्तन बच्चे नौ या दस वर्ष की उम्र के पहले कर ही नहीं सकते।

एक खेल, जिसे लगता है लगभग सभी बच्चे पसंद करते हैं, यह है कि आप उनके हाथ या उंगली पर फूंक मारें और अपने सिर को आजू-बाजू हिलाएं ताकि हवा की धार आगे-पीछे होती रहे। वे मुस्कराएंगे, और फिर थोड़ी देर बाद यह छानबीन शुरू कर देंगे कि यह रहस्यमयी चीज़ आ कहां से रही है और अपनी उंगली आपके मुंह में डालने की कोशिश करेंगे। उन्हें यह भी बहुत मज़ेदार लगता है कि आप पंखे या पुट्टे को झूलाकर भी वही असर पैदा कर सकते हैं।

बाद में लिज़ा 'रिंग-अराउण्ड-ए-रोज़ी' का अपना निजी संस्करण गुनगुनाते हुए गुब्बारे के इर्द-गिर्द चक्कर काटती रही। गाते हुए वह गीत को बदलती गई और इतना बदला कि जल्दी ही वह एक नया गीत बन गया। अमूमन जो भी वह कहती, गाती या करती है, वह इसी तरह होता है, शुरू किसी चीज़ से होती है और धीरे-धीरे बदलकर कोई और चीज़ बन जाती है। कोई संगीतकार इसे किसी 'थीम' को विस्तार देना कहेगा।

मैं कई और छोटे बच्चों को जानता हूं जिन्हें अंतहीन कहानियां सुनाना और अंतहीन गीत गाना अच्छा लगता है। कभी-कभी गीत, उन्होंने जो किया या जो करना चाहेंगे, उसके बारे में होता है। एक चार वर्षीय लड़के की सात वर्षीय बहन स्कूल जाती है। उसकी मां ने मुझे बताया कि एक दिन उस लड़के ने अपने कमरे में अकेले ही गाना गाना शुरू कर दिया। "काश, मेरी एक बहन होती, जो न जाती स्कूल और मैं जो कहता वह करती....।" गीत प्रायः निरर्थक होता है, बस शब्द और निरर्थक शब्दांश; कभी निरर्थक और सार्थक का मिश्रण होता है। कई बच्चे वयस्कों के साथ एक खेल खेलना पसन्द करते हैं जिसमें बारी-बारी से गीत में कुछ जोड़ना होता है। यह उतना सरल नहीं है, जितना लगता है। शब्द और संगीत, दोनों एक साथ गढ़ना कल्पना पर काफी दबाव डालता है और जो कुछ बन पाता है वह प्रायः बच्चे के किए से बेहतर नहीं होता – यकीन मानिए उसके समान ही होता है।

ये उम्दा खेल हैं और अच्छा हो यदि स्कूल व घर दोनों जगह हम इन्हें बढ़ावा दें, इन पर ध्यान दें, इनमें शरीक हों।

यह भी सही है कि पहली बार स्कूल जाने वाले बच्चे खूब गाते हैं, परन्तु वे सब एक से गीत गाते हैं जो उन्हें शिक्षक ने सिखाए हैं और मकसद उन्हें 'सही–सही' गाने का होता है, मकसद कुछ नया गढ़ने का नहीं होता। कुछ बच्चों को यह अच्छा लगता है और वे इसमें प्रवीण हो जाते हैं, अन्य बच्चों के लिए यह एक और ऐसी चीज़ हो जाती है जिसे स्कूल में करना पड़ना है – जबरिया मज़ा। वैसे भी शुरूआती स्कूल के अधिकांश हिस्से को यही नाम दिया जा सकता है। इनमें से अधिकतर बच्चे गाना नहीं सीख पाते, जो कि अनावश्यक बर्बादी ही है। कार्ल ओर्फ तथा उनकी शिक्षण विधि का इस्तेमाल करने वाले अन्य लोगों के अनुभव से पता चलता है कि जब बच्चों को अपने मन से कुछ करने, अपने गीत, लय और धुन बनाने के अवसर दिए जाते हैं तब उनका शाब्दिक व संगीतात्मक विकास बहुत तेज़ी से होता है।

25 जुलाई, 1961

बैठक के कमरे से उभरता कोलाहल इस बात की घोषणा है कि लिज़ा और निजी सम्पत्ति की धारणा के बीच फिर से टकराव हुआ है। वह जो भी देखे, उसमें उसकी रुचि होती है। वह उसकी छानबीन करना चाहेगी, उसे हैण्डल करना चाहेगी, उसकी जांच करना चाहेगी और यदि संभव हो तो उसका पुर्ज़ा-पुर्ज़ा अलग करना चाहेगी। स्वाभाविक है कि उसे इस बात का कोई अहसास नहीं है कि कौन-सी चीज़ कीमती है या नाजुक है या खतरनाक है। मुझे इलेक्ट्रिक टाइपराइटर का प्लग लगाते देखने के बाद वह भी प्लग लगाना चाहती थी। जब उसे कहा गया कि वह बिजली के सॉकेट के साथ छेड़छाड़ न करे तो उसने अपना विरोध काफी उग्र रूप में ज़ाहिर किया। एक दिन उसने गैस चूल्हे के सारे बर्नर चालू कर दिए। खुशकिस्मती से पायलट लाइट की बदौलत सारे बर्नर जलने लगे। लिज़ा को यह सुनकर कतई अच्छा नहीं लगा कि वह चूल्हे के पास न फटके। उसके लिए यह समझ पाना नामुमकिन है कि जिस चीज़ को सब लोग हाथ लगाते हैं, उसे वह क्यों नहीं छू सकती। जब वह कोई चीज़ उठाती है, तो उसे वापस अपनी जगह रखने की कभी नहीं सोचती, चाहे उसे याद हो कि वह चीज़ उसने कहां से उठाई थी।

इस समस्या का कोई अच्छा या आसान जवाब नहीं है। रोज़ाना हमें यह कहते सुना जा सकता है कि 'नहीं, नहीं उसे मत छूना, वह बहुत गरम है, बहुत नुकीला है, चोट लग जाएगी, टूट जाएगा, मेरा है, मुझे इसकी ज़रूरत है।' हर बार स्वाभाविक रूप से उसे लगता है कि अपने आसपास की दुनिया का ओर-छोर समझने के लिए उसके हर भाग की छानबीन करने के उसके अधिकार व ज़रूरत पर हम हमला कर रहे हैं। हर कोई इसे छूता है, मैं क्यों नहीं छू सकती? ज़ाहिर है कि यदि इस तरह का सलूक बहुत ज़्यादा किया जाए तो बच्चे की जिज्ञासा खत्म हो सकती है। शायद उसे लगने लगे कि यह दुनिया ऐसी दिलचस्प चीज़ों से नहीं बनी है जिनकी छानबीन की जाए या जिनके बारे में सोचा जाए, बल्कि यह दुनिया अदृश्य खतरों और परेशानी में फंसने के रास्तों से ही अटी पड़ी है।

इस समस्या को सुलझाने के लिए हम लिज़ा को उसके अपने खिलौने देकर उससे कहते हैं कि वह बाकी चीज़ों को बख्श दे। यह समाधान बहुत कारगर नहीं है। अव्वल तो ये खिलौने उतने दिलचस्प नहीं हैं। और दूसरी बात यह है कि चाहकर भी वह यह याद नहीं रख पाती कि किस चीज़ को वह छू सकती है और किसे नहीं। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बड़े लोग घर की विभिन्न चीज़ों

को इस्तेमाल करते रहते हैं और इसी वजह से ये चीज़ें इतनी दिलचस्प हो जाती हैं। अन्य बच्चों की तरह, लिज़ा भी बड़े लोगों के समान बनना चाहती है और वह सब करना चाहती है जो बड़े लोग करते हैं। जब प्लेटें धोई जाती हैं, तो वह मांग करती है कि उसकी मदद ली जाए। जब खाना पकाया जाता है तो वह-इसे बनाने में मदद करना चाहती है। और उसे झूठ-मूठ के किसी काम में लगाकर नहीं टाला जा सकता।

यदि हम उस चीज़ के बारे में चिंता करने की इतनी ज़रूरत महसूस करते हैं जिसे कुछ लोग 'स्वप्रेरणा' कहते हैं, तो इस बात को महसूस न करना बहुत मुश्किल है कि हम जो कुछ स्कूल में करते हैं वह कहीं बहुत गलत है। एक बच्चे में इससे बढ़कर कोई आकांक्षा नहीं होती कि वह इस दुनिया का सिर-पैर समझ सके, इसमें मुक्त विचरण कर सके और वह सब कर सके जो बड़े लोग करते हैं। समझने व दक्षता हासिल करने के पीछे यह एक बड़ी चालक शक्ति है। हम इसका उपयोग क्यों नहीं कर सकते? हम यकीनन ऐसे कई तरीके खोज सकते हैं जिनके माध्यम से बच्चे अन्य लोगों को वे हुनर इस्तेमाल करते देख सकें, जो हम उन्हें सिखाना चाहते हैं। वैसे यह तरीका उन हुनर के बारे में अपनाना मुश्किल होगा, जैसे अंकगणित के कुछ 'अनिवार्य' हुनर। आखिर वास्तविक ज़िन्दगी में कौन एक भिन्न में दूसरी भिन्न का भाग देता है?

और घर पर हमें ऐसी सारी कीमती व खतरनाक चीज़ें बच्चों की पहुंच से दूर और हो सके तो नज़र से दूर रखना चाहिए। साथ ही बेहतर होगा कि हम ढेरों सस्ती व टिकाऊ चीज़ें घर पर रखें जिन्हें बच्चे छू सकें, इस्तेमाल कर सकें, हमें इनकी टूट-फूट की चिन्ता न हो। कुछ साधारण घरेलू चीज़ें बच्चों के लिए अच्छा तोहफा हो सकती हैं: अण्डा फेंटने का औज़ार, कड़ाही, फ्लेशलाइट। जो परिवार आगे चलकर अपने बच्चे की शिक्षा पर दसियों हज़ार डॉलर खर्च करने वाला है आखिर वह इतनी-सी बात पर क्यों कर परेशान हो और बच्चे को भी परेशान करे कि उसने पच्चीस सेन्ट की कोई चीज़ बर्बाद कर दी है। मैंने अक्सर देखा है कि दवाई की दुकानों और सुपर मार्केट में जब बच्चे चीज़ों को छूते हैं, महसूस करते हैं, उठाते हैं तो लोग खूब परेशान हो जाते हैं जबकि वहां ऐसी लगभग कोई चीज़ नहीं होती जो बच्चे तोड़ सकें, होती भी है तो ऐसी चीज़ों की कीमत बमुश्किल एकाध डॉलर होती है। बच्चे ऐसा क्यों न करें? इसी तरह तो वे उनके बारे में सीखते हैं। यदि वे चीज़ों को उनकी निर्धारित जगह से हटाएं, तो आसानी से उन्हें वापस रखा जा सकता है।

वैसे भी यह मानकर चलना शायद गलत है कि छोटे बच्चे जिस किसी चीज़

को छुएंगे, उसे नष्ट कर देंगे और इसीलिए उन्हें ऐसी किसी चीज़ को नहीं छूने देना चाहिए जो उनकी नहीं है। ऐसा करने से उनकी जिज्ञासा और आत्मविश्वास को ठेस पहुंचती है। इसके अलावा वे अपनी चीज़ों को लेकर ज़्यादा ही अधिकार जताने लगते हैं उन्हें आसानी से बांटने के लिए तैयार नहीं होते। हो जाते हैं। मेरा ख्याल है कि हम उन्हें ये सिखाने की कोशिश करें कि सम्पत्ति का आदर करने का मतलब यह नहीं है कि जो चीज़ तुम्हारी नहीं है उसे कभी न छुओ। इसका मतलब यह है कि चीज़ों को सावधानी से संभाला जाए, उनका उपयोग निर्धारित तरह से किया जाए और यथास्थान वापस रखा जाए। बच्चे ये बातें बखूबी सीख सकते हैं। वे हमारी कल्पना से कम विनाशकारी और बेढंगे होते हैं। और चीज़ों को हैण्डल करने का सही तरीका बच्चे तभी सीख पाएंगे जब वे उन्हें हैण्डल करें, उनका उपयोग करें। शिक्षा के क्षेत्र में मारिया मॉन्टेसरी के ढेरों कीमती योगदान हैं। इनमें से एक यह है कि उन्होंने यह दिखा दिया कि बच्चों को अंग संचालन सिखाया जा सकता है – सिर्फ मौज-मस्ती के तौर पर नहीं बल्कि प्रवीणता से, सटीकता से और आहिस्ता से।

(अनुवादः सुशील जोशी – विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर सतत लेखन, होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम में सक्रिय।)

'हाउ चिल्ड्रन लर्न' का हिंदी अनुवाद **'बच्चे कैसे सीखते हैं'** शीघ्र ही एकलव्य द्वारा प्रकाशित होने वाला है।

घुमक्कड़ शिक्षाविद

जॉन होल्ट दुनिया के जाने माने शिक्षाविद थे। होल्ट का देहांत 14 सितम्बर 1985 को हुआ। 1982 में उनकी बाईं जांघ में ट्यूमर हुआ जिसका इलाज होल्ट ने स्वयं करने की ठानी। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली और संस्थाओं पर से उनका विश्वास उठ चुका था। कैंसर के इलाज के लिए उन्होंने बहुत अधिक मात्रा में विटामिन-सी खाना शुरू किया। 1984 में ट्यूमर को सर्जरी से निकालना पड़ा।

होल्ट की मृत्यु के बाद उनके लिखे लगभग 90 पत्रों का एक संकलन 'सिलेक्टड लेटर्स ऑफ जॉन होल्टः ए लाइफ वर्थ लिविंग' के नाम से छपा। पत्र लिखने में होल्ट माहिर थे और अपने जीवन काल में ही उन्होंने हज़ारों पत्र लिखे होंगे। इन पत्रों में हमें जॉन होल्ट के जीवन के तमाम पहलुओं के बारे

में जानकारियां मिलती हैं।

तमाम लोग शिक्षक का पेशा इसलिए अपनाते हैं क्योंकि उनके पास जीवन में कोई विकल्प नहीं होता। दुनिया में ऐसे खुशनसीब कम ही हैं जो अपने शौक और सपनों के ज़रिए अपनी आजीविका चला पाते हैं। होल्ट उन बिरले लोगों में से थे जिन्होंने अपने शौक को अपना पेशा भी बनाया। वे शायद बच्चों को इतनी संवेदना से इसलिए भी देख पाए क्योंकि वे पेशे से शिक्षक नहीं थे। 1943 में दूसरे महायुद्ध के दौरान, जब होल्ट 20 वर्ष के थे तब उन्होंने अमेरिकी जलसेना की एक पनडुब्बी में 3 साल काम किया। उन्होंने लड़ाई देखी और उसमें हुई तबाही भी। युद्ध से त्रस्त होकर उन्होंने 'वर्ल्ड गवर्नमेंट मूवमेंट' के लिए काम किया। इस दौरान उन्होंने काफी कुछ लिखा और लेक्चर्स देने के लिए पूरा यूरोप घूमे। 1952 में अपनी बहन जेन पिचर के आग्रह पर वे रॉकी माउन्टेन स्कूल, कोलेरेडो, अमेरिका गए। इस स्कूल में चार साल पढ़ाने के बाद होल्ट ने कुछ अन्य स्कूलों में भी पढ़ाया। वे बच्चों के करतबों और हरकतों को अपनी डायरी में दर्ज़ करते जाते। 'हाउ चिल्ड्रन फेल' पुस्तक दरअसल उनकी डायरी का एक अंश थी।

1964 में जब 'हाउ चिल्ड्रन फेल' छपी तब उससे शिक्षा जगत में एक तहलका-सा मचा। शिक्षा पर यह एक नायाब किताब थी। एकदम बेबाक और सुन्दर। होल्ट गज़ब का लिखते थे।

इस दौरान होल्ट के तमाम जिगरी दोस्त बने। होल्ट ने बहुत घुमक्कड़ी भी की, कभी हार्वर्ड विश्वविद्यालय, तो कभी सिडको/मेक्सिको में। होल्ट की खोज उन्हें तमाम जगह ले गई। वे एक ऐसे स्कूल की खोज में थे जहां बच्चों की प्राकृतिक प्रतिभाओं को फलने-फूलने का मौका मिलता हो। सारी ज़िंदगी वे

शयों का स्कूल' तलाशते रहे। होल्ट के सपनों के सबसे करीब का स्कूल शायद 'लिटिल न्यू स्कूल' हॉलैंड में था। इस स्कूल का विस्तृत और सजीव वर्णन होल्ट ने अपनी पुस्तक 'दी अंडरअचीविंग स्कूल' में किया। बाद में होल्ट की मित्र पैगी ने इस स्कूल पर एक सुंदर फिल्म बनाई जिसका नाम रखा गया 'वी हैव गॉट टू काल इट ए स्कूल'।

होल्ट ने शादी नहीं की। लोग उनसे बार-बार पूछते 'आप के खुद के बाल-बच्चे हैं नहीं फिर आप बच्चों के बारे में इतनी गहराई से कैसे जानते हैं?' होल्ट वैसे एक संपन्न परिवार में जन्मे थे परन्तु उन्होंने अपने सिद्धांतों के अनुसार अत्यंत सादगी का जीवन बिताया। आधुनिक और बड़ी संस्थाओं और उपभोक्तावाद से उन्हें चिढ़ थी।

स्कूलों में बदलाव के लिए बीस बरस तक लगातार श्रम करने के बाद होल्ट के विचारों में खुद काफी बदलाव आया। उन्हें स्कूल रूपी संस्था की उपयोगिता खत्म होती दिखाई दी।

उन्हें लगने लगा कि जब कोई संस्था काम करना बंद कर दे तब उस संस्था में दोबारा प्राण फूंकने की बजाए अच्छा यही होगा कि उस संस्था के बगैर काम चलाओ। 1975 में होल्ट स्कूल में बदलाव लाने के बजाए 'स्कूल बंद करो' के पक्षधर हो गए। उन्होंने संवेदनशील मां-बापों से कहा कि अगर आप स्कूल द्वारा किए गए अत्याचारों को सहन नहीं कर पा रहे हैं तो अपने बच्चों को स्कूल से निकालिए और उन्हें खुद पढ़ाइए। आप से अच्छा इन्हें दुनिया का कौन शिक्षक समझ सकता है। 'होम स्कूलिंग' को बढ़ावा देने के लिए 1975 में होल्ट ने 'ग्रोईंग विदाऊट स्कूलिंग' द्विमासिक पत्रिका की शुरुआत की। यह अपने तरह की सारी दुनिया की अनूठी पत्रिका है। इसमें तमाम संवेदनशील मां-बाप अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर खुद के अनुभवों को लिखते हैं।

अमेरिका में रहते हुए होल्ट का पुस्तकों के व्यवसायिक पक्ष से भी टकराव हुआ। होल्ट की एक नई पुस्तक को किसी प्रकाशक ने छापा। पुस्तक पढ़कर कई पाठकों ने होल्ट को अपनी प्रतिक्रियाएं भेजीं। कई पाठकों ने समीक्षा पढ़ी पर तमाम कोशिशों के बावजूद भी उन्हें किताब नहीं मिल पाई। दरअसल हुआ यह कि जब शुरू में किताब अच्छी नहीं बिकी तो प्रकाशक ने सारी बकाया प्रतियों की लुगदी बना दी। होल्ट को इससे एक बड़ा धक्का लगा। होल्ट को लगा कि ऐसा ही हश्र न जाने कितनी ही अन्य अच्छी पुस्तकों के साथ होता होगा। इसके बाद होल्ट को जहां कहीं भी शिक्षा पर कोई अच्छी पुस्तक दिखती, वे तुरन्त उसकी 100-200 प्रतियां खरीद लेते। वे इन किताबों की समीक्षा तो लिखते ही, परन्तु उन्हें अन्य लोगों को भी उपलब्ध करवाते। प्रसिद्ध जापानी पुस्तक 'तोत्तोचान' की एक अत्यंत मार्मिक समीक्षा होल्ट ने लिखी, जो 'ग्रोईंग विदाऊट स्कूलिंग' में छपी। होल्ट की मृत्यु के बाद उनके द्वारा लिखी गई बहुत सारी पुस्तकों की समीक्षाओं को संकलित करके 'शेरिंग ट्रेज़र्स' नामक किताब में छापा गया। इसके अलावा होल्ट ने ऐसी कई पुस्तकों को दुबारा छपवाया जो नायाब थीं पर आर्थिक कारणों से जिन्हें कोई छापने को तैयार न था।

● अरविंद गुप्ता

(अरविंद गुप्ता – विज्ञान व अन्य विषयों पर स्वतंत्र लेखन, नई दिल्ली में रहते हैं।)
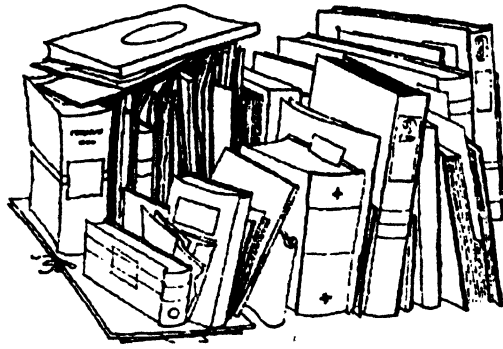
किताब: टीचर्स एनोटेटड एडीशन, पीपल, प्लेसिस एण्ड चेन्ज (People, Places and change): एन इंट्रोडक्शन टु वर्ल्ड कल्चर्स (An introduction to world cultures) (शिक्षक निर्देशिकायुक्त संस्करण, लोग, जगह और बदलाव – विश्व संस्कृतियों का एक परिचय), लेखक: लियोनार्ड बेरी (भूगोल प्राध्यापक) एवं रिचर्ड बी. फोर्ड (सह-प्राध्यापक, इतिहास), क्लार्क विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका, पृष्ठ संख्या: 588 प्रकाशक: होल्ट, राइनहार्ट और विन्सटन, 1976

एक किताब: नई भी पुरानी भी

● रश्मि पालीवाल

सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई में किस-किस तरह के बदलाव व सुधार किए जा सकते हैं? इस मुद्दे पर कई तरह के विचार व प्रयास होते रहे हैं और छात्रों व शिक्षकों के लिए नई तरह की पाठ्य-सामग्री की रचना भी की गई है।

इस लेख में हम संयुक्त राज्य अमेरिका में तैयार की गई एक पुस्तक की चर्चा करेंगे। इस किताब को क्लार्क विश्वविद्यालय के दो प्राध्यापकों ने 1976 में तैयार किया था। प्रोफेसर बेरी और फोर्ड ने एक प्रचलित पुस्तक (Knowing Our Neighbours in the Eastern Hemisphere) का विस्तृत संशोधन करके एक नितान्त नए नज़रिए से तैयार की People, Places and Change (लोग, जगह और बदलाव – विश्व संस्कृतियों का एक परिचय)। यह पुस्तक माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शालाओं के छात्रों के लिए तैयार की गई। इसी का एक शिक्षक निर्देशिकायुक्त संस्करण भी बनाया गया। इतिहास, भूगोल जैसे विषयों में शिक्षण के एक फर्क विचार का परिचय और अलग किस्म की सामग्री के उदाहरण उपलब्ध कराने में यह किताब उपयोगी है। बीस

साल पहले तैयार की होने के बावजूद इस पुस्तक में उठाए मुद्दे अप्रासंगिक नहीं हुए हैं। इसलिए आइए, इस पुस्तक के ज़रिए सामाजिक अध्ययन शिक्षण में बदलाव के संभावित मसौदों पर कुछ विचार करते हैं।

क्यों एक नई किताब?

लेखक अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि आज के छात्रों को एक ऐसी किताब की ज़रूरत है जो सिर्फ इतिहास, भूगोल और संस्कृति की मूलभूत जानकारी ही न दे बल्कि जो दुनिया के विभिन्न लोगों की बदलती हुई धारणाओं, मान्यताओं और व्यवहार का अध्ययन करवाए। कई पुरानी और कई प्रायोगिक नई पाठ्य-पुस्तकों की समीक्षा कर लेने के बाद बेरी और फोर्ड ने आठ बातें तय कीं जिनके अनुसार वे अपनी नई किताब को बनाना चाहते थे।

1. **लेखन शैली की रोचकता का महत्व:** सीखने में मज़ा ज़रूर आना चाहिए। लेखकों ने कोशिश की है कि पुस्तक में तथ्य ज़रूर हों – जलवायु के, प्राकृतिक संसाधनों के, टेकनॉलॉजी के, इतिहास के, पर वे रोचक व आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किए गए हों। उनका अपना शिक्षण-अनुभव यह बताता था कि जब तथ्यों को मानवीय संदर्भों में प्रस्तुत किया जाता है तब वे ज़्यादा अच्छी तरह से आत्मसात किए जाते हैं। इसलिए उन्होंने पाठों में अलग-अलग पात्रों को रखा है।

वैसे तो ये सारे पात्र काल्पनिक हैं। पर असल में इनमें से हर पात्र के पीछे कोई वास्तविक व्यक्ति ज़रूर है जिसके बारे में लेखकों को पता चला था या जिससे वे स्वयं मिल चुके थे। इसी तरह पाठों में कहानियों की तरह जो घटनाएं बताई गई हैं वे वास्तविक परिस्थितियों के आधार पर बनाई गई हैं।

इस तरह की काल्पनिक कहानियों के माध्यम से स्कूली पाठ्य-पुस्तक तैयार करना एक निहायत ही नया प्रयोग है, और लेखक बताते हैं कि उनका अनुभव यह दर्शाता है कि युवा लोगों व बच्चों को यह तरीका बहुत पसंद आया है और वे बड़ी सहजता के साथ इसके माध्यम से सीख पाए हैं।

उदाहरण के लिए नाइजीरिया देश पर पाठ की शुरुआत इस तरह होती है:

पश्चिमी अफ्रीका: नए और पुराने शहर

अवेनी का बचपन: *गाड़ियों की पों-पों और बसों की गूंज चारों तरफ छाई थी। बेहनीन शहर (पृष्ठ-85 पर बने मानचित्र में देखें) हमेशा इतना व्यस्त और शोरभरा रहता था। पर अवेनी एक धड़कता दिल लिए यहां खड़ी थी। इफे के पास (पृष्ठ-85 पर बने मानचित्र में देखें) बसे अपने छोटे से गांव से वह अभी हाल में ही यहां आई थी।*

वह बेहनीन आई थी क्योंकि उसके मंगेतर, ओलू ने थोड़े पैसे जोड़ लिए थे। और

अब उनकी शादी हो सकती थी। वह खुश थी, पर कुछ आशंकित भी।

अवेनी के मां-बाप ओलू से शादी की बात से काफी परेशान थे। था तो वह भी योरूबा कबीले का ही, पर उसका गांव बहुत दूर था। वे उसके कुनबे को जानते तक नहीं थे। अजनबियों के घर में लड़की का ब्याह करना उन्हें सुहाता नहीं था।

उसका मंगेतर यानी वह आदमी जिससे वो शादी करने की सोच रही है।

अवेनी की कहानी एक छोटे से गांव में शुरू होती है। उसके पिता किसान थे। उन्होंने अपने परिवार के छोटे से खेत पर काम करते हुए अपनी उम्र गुज़ार दी थी। जंगल के बीच साफ किए गए इन छोटे-छोटे खेतों में येम (रतालू), सेम, कोको और मक्का अच्छे पैदा होते थे।

नाईजीरिया में तीन प्रमुख कबीले रहते हैं, पश्चिम में योरूबा, उत्तर में हौसा और पूर्व में इबो।

दक्षिणी नाइजीरिया में भूमध्यरेखीय घने वन हैं। अवेनी का परिवार भी अन्य सभी परिवारों की तरह अपने विभिन्न खेतों के टुकड़ों पर बारी-बारी से खेती करता था। शुरू में वे खाद नहीं डालते थे। बल्कि मिट्टी के प्राकृतिक उपजाऊपन पर निर्भर रहते थे। घने जंगल के बीच वे कुछ हिस्से के पेड़ काट कर जला डालते। कुछ साल ऐसे फसल उगाने के बाद मिट्टी की उर्वरता हल्की पड़ने लगती तो किसान उस ज़मीन पर फिर से जंगल उग जाने देते और दूसरी जगह के खेतों पर जंगल जला कर खेती शुरू कर देते।

छात्रों से कहिए कि वे घने जंगलों में खेती की इस पद्धति को समझाएं।

अवेनी की मां भी बहुत मेहनती थीं। खेती से जुड़े बोनी और निंदाई जैसे कठिन काम वे ही करती थीं। और तो और वे एक मंजी हुई व्यापारी भी थीं। नाइजीरिया की अनेकों औरतों की तरह वे ही परिवार की सारी खरीद-फरोख्त भी संभालती थीं।

वे खास तौर से कोला-नट बेचा करती थीं। हफ्ते में तीन दिन सुबह वे आसपास की बस्तियों के घरों से कोला नट खरीदने जातीं। जब 40-50 पाउन्ड

नाइजीरिया के लोग कोला नट चबाना बहुत पसंद करते हैं। कोका-कोला इसी से निकाला जाता है।
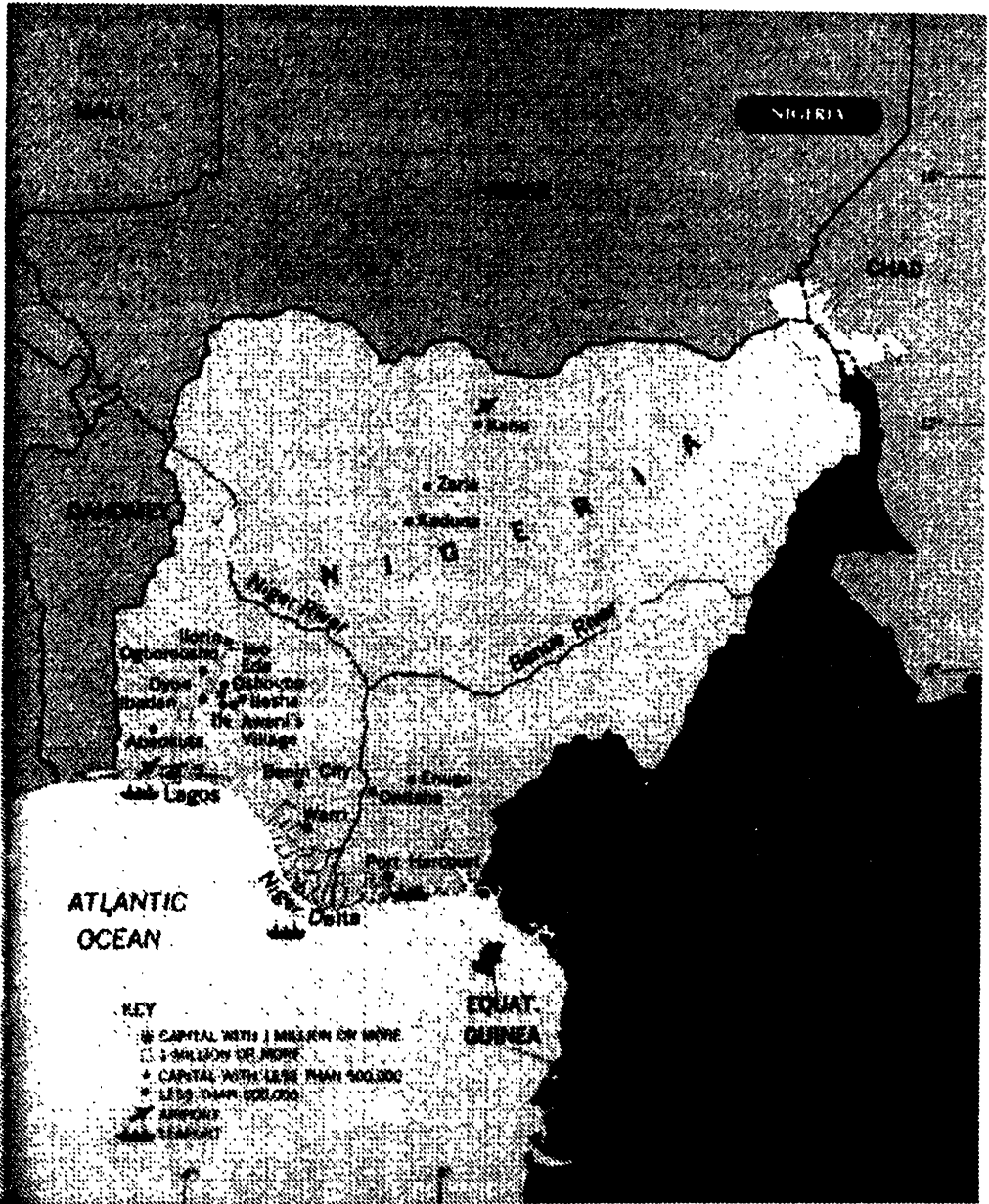
इकट्ठे हो जाते तो उन्हें सिर पर रखकर 8-10 मील के दायरे में लगने वाले किसी हाट में ले जा कर बेच देतीं।

अवेनी अपने साथ बचपन के कई सुखद लम्हे संजोए हुए थी। मां और पिता दोनों ही उससे ऊंची-ऊंची अपेक्षाएं रखते थे। उन्हीं का ज़ोर था कि वह हर हालत में स्कूल की पढ़ाई पूरी करे।

छात्रों से कहिए कि वे नाइजीरिया के हाट-बाज़ारों के बारे में बताएं। उनसे कहिए कि वे बाज़ारों में औरतों की भूमिका का वर्णन करें। फिर उनसे कहिए कि इन चित्रों को समझाएं।

ये चित्र नाइजीरिया के पुराने और नए बाज़ारों के दृश्य प्रस्तुत करते हैं। अवेनी और ओलू को कौन से बाज़ार ज़्यादा अच्छे लगते होंगे? क्यों? उनके माता-पिता को? और तुम्हें क्या पसंद होगा?

2. **मूलभूत कुशलताओं का ख्याल:** नई किताब बनाने में यह मुद्दा भी महत्व का बना। लेखकों का मानना था कि जानकारी के ज्ञान के अलावा छात्रों को कई महत्वपूर्ण कुशलताओं का अभ्यास दिलाना भी ज़रूरी है। जैसे, किसी मत या तर्क का मूल्यांकन कर पाने, अलग-अलग आंकड़ों की तुलना कर पाने, किसी बात के नफा-नुकसान की जांच कर उसे समझा पाने, किसी समस्या के संदर्भ में कोई प्रस्ताव सोच पाने की कुशलताएं सिखाई जानी चाहिए। लिखित अंशों के अध्ययन के अलावा नक्शों, चार्टों, चित्रों, रेखा-चित्रों के अध्ययन व उपयोग की क्षमता भी छात्रों में विकसित की जानी चाहिए।

   यही नहीं, खुलकर चर्चा करना भी बहुत अहम बात है। पुस्तक में जगह-जगह छात्रों को किसी बिन्दु पर चर्चा करने के लिए आमंत्रित किया गया है या पाठ में बताई घटनाओं की तुलना स्वयं के जीवन की मिलती-जुलती घटनाओं से करने के लिए कहा गया है। नक्शों व चित्रों आदि पर छात्रों को दिए गए अभ्यासों के कुछ उदाहरण ऊपर उद्धृत पाठ के अंश में आपने पढ़े। अन्य प्रश्न इस प्रकार के भी हैं:

– अफ्रीका में औरतों की भूमिका बदल रही है। अल्जीरिया में औरतों की नई और पुरानी भूमिकाओं के बीच तुलना करो। फिर एक चार्ट बनाओ और उसमें यह दिखाओ कि अल्जीरियन औरतों की गतिविधियां व भूमिकाएं नाइजीरियन औरतों से कैसे फर्क हैं। तुम इन बातों की तुलना अपने खुद के समुदाय की औरतों की स्थिति से भी कर सकते हो।

– तनजानिया, अल्जीरिया और सूडान की कृषि की नई विधियों की तुलना करो।

3. **स्थानीय जांच पड़ताल व खोज का महत्व:** नई पुस्तक के रचनाकार इस बात के प्रति भी सचेत रहे। पाठ की कहानियां दूर-दराज़ के देशों में स्थित हैं। पर वहां होने वाले परिवर्तनों को समझने की ज़रूरत इसलिए है, ताकि छात्र अपनी ज़िन्दगी में होने वाले बदलावों को बेहतर समझ सके।

जैसे, नाईजीरियां के पाठ में एक बिन्दु पर यह चर्चा होती है कि पुराने बेहनीन शहर में अभी-भी कितने पुराने हुनर वाले लोग रहते हैं और मूर्ति बनाने के पुराने धंधे को जीवित रखे हुए हैं। यह सब देखने के बाद अवेनी और ओलू सोचने लगते हैं – *"नाइजीरिया के पुराने हस्तशिल्पों को कायम रखने का कठिन काम उन्हीं की पीढ़ी को करना होगा। पर वे यह भी जानते हैं कि तेल के कुंओं, कारखानों और बड़े शहरों वाला नाइजीरिया भी उनका ही नाइजीरिया है। क्या वे नए का निर्माण करते हुए पुराने की श्रेष्ठ बातों को कायम रख सकते हैं?"*

यहां छात्रों के लिए यह प्रश्न रखा गया है, *"क्या तुम अपने समुदाय के बीच नई बातों का निर्माण करते हुए पुरानी बातों की श्रेष्ठताओं को जीवित रख सकते हो?*

इसके कुछ उदाहरण बताओ।"

इस तरह कहानियों से शुरू कर के कई प्रकार की स्थानीय खोजबीन के सुझाव छात्रों को दिए गए हैं।

4. **कैरियर के मुद्दों के प्रति जागरूकता:** युवा उम्र की दहलीज़ पर खड़े छात्रों के सामने एक बहुत अहम मुद्दा होता है, अपने कैरियर के चुनाव का। यानी बड़े होकर हमें क्या बनना है? पुस्तक की अनेकानेक कहानियों के अनेकानेक पात्र, भिन्न व्यवसाय वाले लोग हैं। लेखक यह उम्मीद करते हैं कि उनके जीवन की कशमकश को समझते हुए छात्र अपने आप ही यह सोच पाएंगे कि वे क्या-क्या बन सकते हैं! क्या बनना उन्हें अच्छा लगता है? किसी व्यवसाय के लिए किस तरह की कुशलताएं चाहिए और क्या उनमें वे कुशलताएं हैं?

नाइजीरिया के पाठ में अवेनी बड़ी होकर नर्स बनती है और बेहनीन शहर के अस्पताल में उसे नौकरी मिलती है। उसके रिश्तेदारों को अवेनी पर बहुत गर्व महसूस

होता है। इस बिन्दु पर छात्रों से यह प्रश्न रखा गया है–

"तुम किस तरह के नौकरी-धन्धे का विचार कर रहे हो? क्या तुम्हें ऐसा काम-धंधा ढूंढना चाहिए जिससे तुम्हारे घर वाले तुम पर गर्व करें?"

इसी तरह तनजानिया के पाठ में एक पूरे पेज पर तीन चित्र हैं जिनमें एक महिला बच्चों को पढ़ा रही है, एक महिला पुस्तकालय में शोध कर रही है और दो महिलाएं आधुनिक केला बगान में काम कर रही हैं।

इन तीन चित्रों के बाद प्रश्न है, "तुम्हें क्या लगता है, माईला इनमें से कौन-सा पेशा चुनेगा? तुम कौन-सा पेशा चुनते? क्यों?"

5. **विकल्पों के बीच अपना निर्णय लेने का महत्व:** अपना कैरियर चुनने का निर्णय एक अहम बात है। पर लेखकों के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण बात यह समझाना है कि विभिन्न लोगों के सामने किस-किस तरह की बदलती हुई परिस्थितियां आ रही हैं, और वे किन कठिनाइयों से होकर अपने-अपने निर्णय ले रहे हैं। इस पुस्तक की कहानियां विभिन्न लोगों की व्यक्तिगत दुविधाओं को नाटकीय ढंग से उभार कर सामने लाती हैं। जैसे एक तरफ पशुपालन के धंधे की स्वतंत्रता और दूसरी तरफ सिंचाई की सुरक्षा के बीच चुनाव करने की दुविधा या अपने परिवार के छोटे से खेत की स्वतंत्रता और कारखाने की बढ़ी हुई आमदनी के बीच चुनाव करने की दुविधा.......

उदाहरण के लिए सूडान के पाठ का एक प्रमुख मुद्दा है कि नील नदी घाटी के लोग जो पुराने समय से असिंचित अस्थाई खेती व पशुपालन के सहारे जीते थे, कैसे बांध से सिंचित भूमि में कपास की व्यापारिक खेती का पेशा अपनाते हैं। शुरू में तो लोग विरोध करते हैं। उनकी आपत्ति व अनिच्छा के कारण क्या थे?

"कपास क्यों उगाएं? न तो भेड़ इसे खाएंगी, न हमारे बच्चे इसे खाएंगे। इससे हमें क्या मिलेगा? और हमारा परिवार खाएगा क्या?"

"मैदानों में जो रहता है वो आज़ाद रहता है। गेजीदा (सिंचित कपास परियोजना का क्षेत्र) में हम कैंप में बंद सैनिकों की तरह हो जाएंगे।"

पर धीरे-धीरे यह विचार लोगों में फैलता गया। कुछ सालों में हज़ारों परिवार नई सिंचित जमीन पर बसने आए.....।

इस जगह पर पाठ में यह प्रश्न है:

गड़रिए एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। तुम्हारे विचार में क्या बेहतर है – एक जगह पर स्थाई रूप से रहना या कुछेक महीनों में अपना स्थान बदलते रहना? क्यों?

लेखक उम्मीद करते हैं कि औरों की ऐसी परिस्थितियों को समझने के प्रयास में

शायद छात्र अपनी ऐसी परिस्थितियों को भी बेहतर ढंग से समझ पाएंगे।

6. **मूल्यों का महत्व:** यह मुद्दा इस किताब को अन्य किताबों से काफी अलग कर देता है। यद्यपि किशोर उम्र के छात्र मूल्यों के मुद्दे से बहुत प्रभावित रहते हैं पर आमतौर पर पाठ्य-पुस्तकें इस पर ध्यान बहुत कम देती हैं। लेखकों को लगता है कि मानव मूल्यों से जुड़े तमाम मामले जैसे मां-बाप के प्रति बच्चों का दायित्व, रोज़गार, अपने साथियों के बीच अपनी हैसियत का सवाल, ईमानदारी का सवाल, शिक्षा की ज़रूरत आदि वे बातें हैं जो विभिन्न संस्कृतियों के युवा लोगों के बीच एक समान सूत्र बनाती हैं। किसी भी देश के युवा हों, वे इस प्रकार के मूल्य आधारित निर्णयों से अवश्य ही जूझ रहे होते हैं। अतः पुस्तक में इन मुद्दों को जगह मिलनी चाहिए!

दूसरा अहम सवाल है, 'मैं कौन हूं?' इस सवाल का जवाब भी कुछ विशेष मूल्यों से हमारे बन्धन पर टिका है। अगर दूसरे लोग हमारे मूल्यों को नहीं समझेंगे तो हमारे और उनके बीच एक अच्छी खासी खाई बनी रहेगी। छात्रों को यह समझ बनानी चाहिए कि अलग-अलग जगहों पर लोगों द्वारा लिए गए निर्णय इस बात से भी प्रभावित होते हैं कि उनके मूल्य क्या हैं, उनकी परंपराएं क्या हैं?

जैसे, दो युवाओं, अवेनी और ओलू का ही उदाहरण लें। वे शिक्षित नाइजीरियन हैं, जो परंपरागत खर्चीली शादी की रस्म से बचना चाहते हैं। लेकिन वे अपने माता-पिता के साथ अलगाव भी नहीं बढ़ाना चाहते और अपनी सांस्कृतिक विरासत की सुन्दरता से भी नहीं कटना चाहते। उन्हें क्या करना चाहिए? आखिर में दोनों अपनी शादी के लिए गांव लौटते हैं। पर शादी के बाद वे शहर में रहकर ही अपने-अपने कैरियर में लगे रहने का निर्णय करते हैं। यहां पर प्रश्न रखा गया है कि ऐसी परिस्थिति में आप क्या करते?

लेखक सोचते हैं कि इस तरह के सवालों पर चर्चा करने में छात्रों को मज़ा भी आएगा और दुनिया के लोगों के बारे में उनकी समझ भी बढ़ेगी।

7. **बदले हुए परिप्रेक्ष्यों का महत्व:** इस पुस्तक का दूरगामी उद्देश्य यही है कि छात्र दुनिया को, समाज को सिर्फ अपने अनुभव व नज़रिए से नहीं देखें बल्कि दूसरों के अनुभवों व नज़रियों से भी समझने की कोशिश करें। वे यह भी समझें कि दूसरे समाज के लोगों के बारे में पूर्वाग्रह-भरी छवियों को छोड़ना ज़रूरी है क्योंकि कहीं भी लोग व समाज स्थिर नहीं हैं। हर जगह लोग बदल रहे हैं और नए-नए निर्णय ले रहे हैं, जिनमें वैसा ही रोना-हंसना, खटना, मस्ती करना, सोचना, संघर्ष करना शामिल है – जैसा हम खुद अपने जीवन में कर रहे हैं। जहां कई मायनों में सभी जगहों के लोगों में समानता है वहीं, अपनी-अपनी विशिष्टताएं भी हैं, भौगोलिक भी और सांस्कृतिक भी।

लेखक पुस्तक के शुरू में यह सुझाव देते हैं कि छात्र चाहें तो पहले दुनिया के विभिन्न लोगों की समानता-भिन्नता पर, और उनके बीच हो रहे बदलावों पर अपने पहले से बने हुए विचार लिख लें या टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड कर लें। फिर किताब समाप्त करने पर वे अपने पुराने विचारों की समीक्षा कर के देखें कि अब वे उन जगहों, लोगों और बदलावों के बारे में क्या सोचते हैं और शुरू में क्या सोचते थे।

8. **मुद्दों पर आधारित विषयवस्तु का चुनावः** विषयवस्तु पर अपनी सोच को स्पष्ट करते हुए लेखकों ने लिखा है कि, "आमतौर पर लेखक और प्रकाशक कोई भी चीज़ अपनी किताब से छोड़ देने में बहुत कतराते हैं। इस कारण पाठ्य-पुस्तकों में नई बातें जुड़ती तो जाती हैं पर किताब के स्वरूप में कोई मूलभूत बदलाव नहीं आता।"

पाठ्य-पुस्तक लेखन की इस परंपरा के विपरीत लेखकों ने उत्तरी अमेरिका को छोड़कर विश्व के छह प्रदेशों को चुना और उनमें से भी कुछ परिवेशों, संस्कृतियों और परिस्थितियों को चुना जो एक हद तक उस प्रदेश में आ रहे बदलावों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ज़ाहिर है इस चुनाव से कई-कई बातें छूट गई हैं पर लेखकों का विश्वास है कि उनकी किताब "दुनिया के लोगों की मूलभूत जीवन शैलियों को समझने के लिए बच्चों को पर्याप्त आधार देती है।"

फिर भी जानकारी का दबाव

यह सच है कि लेखकों ने बहुत सोच कर चुना है कि किन देशों व लोगों का वर्णन किया जाए और इस चुनाव में वे पाठ्यक्रम के परंपरागत आधारों से आगे बढ़ पाए हैं। जानकारियों के पुराने टुकड़े परोसने की बाध्यता से मुक्त हो कर वे बदलती मानवीय परिस्थितियों को समझने पर ध्यान केन्द्रित कर पाए हैं। नक्शों, चित्रों व घटनाओं को शिक्षण के सशक्त माध्यमों की तरह किताब में उपयोग किया गया है। इनसे विषयवस्तु में बहुत हद तक जीवन्तता, गहराई व पैनापन आया है। बीच-बीच के प्रश्न व अभ्यास के प्रश्न छात्रों से सजगता और सक्रियता की बलवान अपेक्षा बनाए रखते हैं। जानकारियां रट के हूबहू उगल पाने को ज्ञानप्राप्ति का मापदण्ड नहीं माना गया है। अतः छात्रों के सामने बौद्धिक प्रयास का एक नया सोपान प्रस्तुत हो सका है।

हर प्रयास की कुछ खूबियां होती हैं और कुछ सीमाएं। पुस्तक को पढ़कर इसकी कुछ सीमाएं बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आती हैं।

कई जगहों पर कहानियों, घटनाओं और पात्रों का इस्तेमाल कृत्रिमता लिए रहता है। कहीं-कहीं पात्रों के मुंह से जो संवाद बुलवाए गए हैं, वैसे संवाद लोग स्वयं आमतौर पर अपनी दिनचर्या में नहीं बोलते। एक नई कोशिश के बावजूद पाठों में

जानकारी देने का पुराना ढांचा झलक पड़ता है।

जैसे, ओलू अपने दफ्तर के काम से तेल के कुंओं के दौरे पर जाता है। अवेनी उसके साथ जाती है। ओलू बड़े गर्व के साथ कहता है, *"तेल नाइजीरिया के भविष्य की कुंजी है। 1968 में हमारा तेल उत्पादन बहुत ज़रा-सा था और आज हम हर दिन दो करोड़ बैरल तेल का उत्पादन करते हैं।"*

ओलू आगे कहता है, *"एक बैरल की कीमत 10 डॉलर है। इसका मतलब है कि हर महीने नाइजीरिया को 600 करोड़ डालर की आमदनी हो रही है। जैसे-जैसे तेल के भाव बढ़ेंगे नाइजीरिया और संपन्न बनेगा।"*

इस तरह की बातें पाठ में सामान्य जानकारी के रूप में ही लिखी जातीं तो ज़्यादा सहज प्रतीत होतीं।

जानकारी देने का दबाव नाईजीरिया पर पाठ के अंत में बहुत स्पष्ट ढंग से नज़र आता है। पाठ में योरूबा कबीले का उदाहरण दिया गया है। हौसा और इबो कबीले की चर्चा करना लेखकों के मूल उद्देश्यों, यानी बदलावों की चुनी हुई परिस्थितियों का अध्ययन, आदि, के लिए ज़रूरी नहीं है। पर आलोचना से बचने के लिए वे दबाव में आ ही जाते हैं। और अवेनी विवाह किस तरह से करे इस प्रसंग का उपयोग करते हुए बड़ी चतुरता से इबो और हौसा कबीलों की जानकारी पाठ में घुसा डालते हैं।

'अवेनी सोचती है कि नाइजीरिया के और युवा लोग क्या करते होंगे? उसके साथ एक नर्स काम किया करती थी वावो, जो उत्तर से आई थी। वह हौसा कबीले की थी। सभी हौसा लोगों की तरह वावो भी अपने मां-बाप की इच्छा के विरुद्ध शादी नहीं करती। हां, हौसा लोगों की और भी बहुत सारी गहरी और पुरानी परंपराएं हैं।'

फिर 17 पंक्तियों में हौसा लोगों के इतिहास व व्यापार की जानकारी परोस दी जाती है।

इसी तरह आगे अवेनी सोचती है कि उसकी एक दोस्त और थी, लूसी। वह ईबो कबीले की थी। पर उसने भी घर जाकर ही शादी की थी। फिर ईबो लोगों की जानकारी प्रस्तुत की जाती है।

सबकी भलाई का मसला

सामाजिक बदलावों की तरह शैक्षिक बदलाव के नए प्रयास भी पुरानी बातों के दबाव को नज़र-अन्दाज़ नहीं कर सकते..... बस, उनके साथ चतुरता से पेश आ सकते हैं। इसका रोचक उदाहरण लेखक स्वयं प्रस्तुत कर डालते हैं।

अमरीकी छात्रों के लाभ के लिए लोगों और संस्कृतियों के बारे में एक संतुलित

दृष्टिकोण पेश करने की कोशिश पाठों में है, पर यह कोशिश पूरी तरह आश्वस्त नहीं करती। संतुलन का एक उदाहरण तब मिलता है जब ओलू तेल उत्पादन से नाइजीरिया की संपन्नता को लेकर उत्तेजित होता है। तब अवेनी सोचती है, "धन मिलेगा सो तो ठीक, पर अभी तक इस धन ने उसके गांव पर तो कुछ भी प्रभाव नहीं डाला है। वह ओलू से पूछती है कि तेल का धन नाइजीरिया के किसानों को क्या लाभ पहुंचाएगा? ऐसा तो नहीं कि इस धन से विदेशी लोग और शहरों के अमीर लोग ही ज़्यादा धनी हो जाएं?"

ओलू इस आशंका से सहमत होता है। वह निर्णय करता है कि वह उन तरीकों को खोजेगा जिनसे नई संपन्नता सभी नाइजीरियाई लोगों की मदद कर सके।

पाठ में इस तरह के आशावादी, आदर्शवादी पड़ावों की मिठास लिए हम आगे पढ़ते जाते हैं। आइए ज़रा ठिठक कर सोचें। उपरोक्त अंश यह आभास देता है कि सब की भलाई का तरीका खोजना संभव है। बस, ओलू जैसे भले लोगों के विचारों से यह मसला किसी कारण ज़रा खिसक-सा गया था!! छात्रों को इस तरह के लेखन से शायद प्रेरणा मिलेगी। पर किताब इस महत्वपूर्ण मसले को औपचारिक और सतही स्तर पर ही रखते हुए जिस मसले को पाठकों के मन में पूरी तरह हावी हो जाने देती है वह है – पुरानी जीवन पद्धतियों को छोड़ने और शिक्षा, उद्योग, व्यापार, शहर, और आधुनिक सरकारी योजनाओं के दायरों को उत्साह के साथ अपनाने का आग्रह। मौटे तौर पर एक अमरीकी परिप्रेक्ष्य ही है यह । आधुनिक रहन-सहन की सुविधाओं का लोभ पाठों में गजब की सादगी के साथ छलछलाता रहता है।

एक दूसरी कहानी का पात्र ओसमान सोचता है, 'विश्वविद्यालय की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद वह सरकार के लिए कपास उत्पादन बढ़ाने का काम करेगा। या फिर वह दूसरे देशों में कपास की बिक्री बढ़ाने में सरकार की मदद करेगा।

ओसमान को विश्वास था कि उसे ऐसा काम अच्छा लगेगा। मेहनत करके वह पैसे भी जोड़ सकता है, और एक कार भी खरीद सकता है। उसके पिता हमेशा एक कार की इच्छा रखते रहे। पर कभी खरीद पाने की हैसियत नहीं बना

पाए। अगर ओसमान कार खरीद सके तो उसके पिता को उस पर कितना गर्व होगा।'

ऐसे कई और उदाहरण पाठों में हैं जो कुल मिलाकर छात्रों के लिए एक अदद मध्यमवर्गीय विश्वदर्शन का निर्माण करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में विषयवस्तु को लेकर लेखकों का दावा विडम्बना भरा नज़र आता है कि उनकी किताब "दुनिया के लोगों की मूलभूत जीवन शैलियों को समझने के लिए बच्चों को पर्याप्त आधार देती है।"

दुनिया भर में हो रहे बदलावों की जानकारी देते हुए वे दुनिया के उन लोगों को हाशिए पर खिसका गए हैं जो सफलता और महत्वकांक्षा की सीढ़ियों पे चढ़ नहीं सके हैं।

इस दृष्टि से यह पुस्तक निश्चय ही बासी पड़ चुकी है। 'सिंचाई से खुशहाली ही आएगी', 'नाईजीरिया के तेल उद्योग का धन सभी देशवासियों की भलाई में लग सकेगा' जैसी भोली आशावादिता (या वैचारिक एकतरफापन) के धरातल पर आज लोगों, जगहों और बदलावों के बारे में नहीं लिखा जा सकता! सामाजिक अध्ययन शिक्षण के प्रयोगों में जहां तकनीक (जैसे कहानियों का उपयोग) और पद्धति (जैसे चर्चा, विश्लेषण.....) महत्वपूर्ण मुद्दे बनते हैं वहीं लेखकों के वैचारिक रुझान के प्रति भी सचेत रहने की ज़रूरत है।

पाठ्य पुस्तक की सक्रियता किसमें

वैचारिक रुझान हर प्रयास में मौजूद रहता ही है – पर इस पुस्तक में वह विशेष रूप से ज़ोर पकड़े हुए है क्योंकि छात्रों के कैरियर, व्यक्तिगत मूल्यों व दूसरे समाजों के प्रति संतुलित परिप्रेक्ष्य बनाने को यह पुस्तक अपने प्रमुख उद्देश्य मानती है।

क्या ये बातें औपचारिक शिक्षण का मसौदा होनी चाहिए? मूल्यों की शिक्षा व्यक्ति अपने अनुभव व परिस्थिति के हिसाब से लेता रहता है। हां, दूसरों की विस्तृत जानकारी जितनी अधिक मिलेगी, उतनी अधिक बौद्धिक संपन्नता से व्यक्ति अपने विचार ढाल पाएगा। पर इसमें पाठ्य-पुस्तक की भूमिका क्या हो? सचमुच में संतुलित चुनाव करके जानकारी देना, समझ बनाना और विश्लेषण करना सिखाना, या कि चुनी हुई विषयवस्तु के एकतरफे प्रस्तुतिकरण के माध्यम से सक्रिय रूप से छात्रों के मूल्यों व विचारों पर प्रभाव डालना? कैरियर के चुनाव के उदाहरण को ही लें। अवेनी का नर्स बनना गर्व की बात है, यह ज़ोरों से कहा गया है, पर किसी नर्स की दिनचर्या का वर्णन देने की ज़रूरत लेखकों को नहीं महसूस हुई। इस तरह की बातों से लगता है कि छात्रों की ठोस समझ बनाना उनके लिए इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कुछ खास विचारों से उन्हें प्रभावित करना है। इस गंभीर प्रश्न पर ठोस और सटीक चर्चा का अवसर यह पुस्तक हमें देती है।

(रश्मि पालीवाल – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध।)

□ □ □
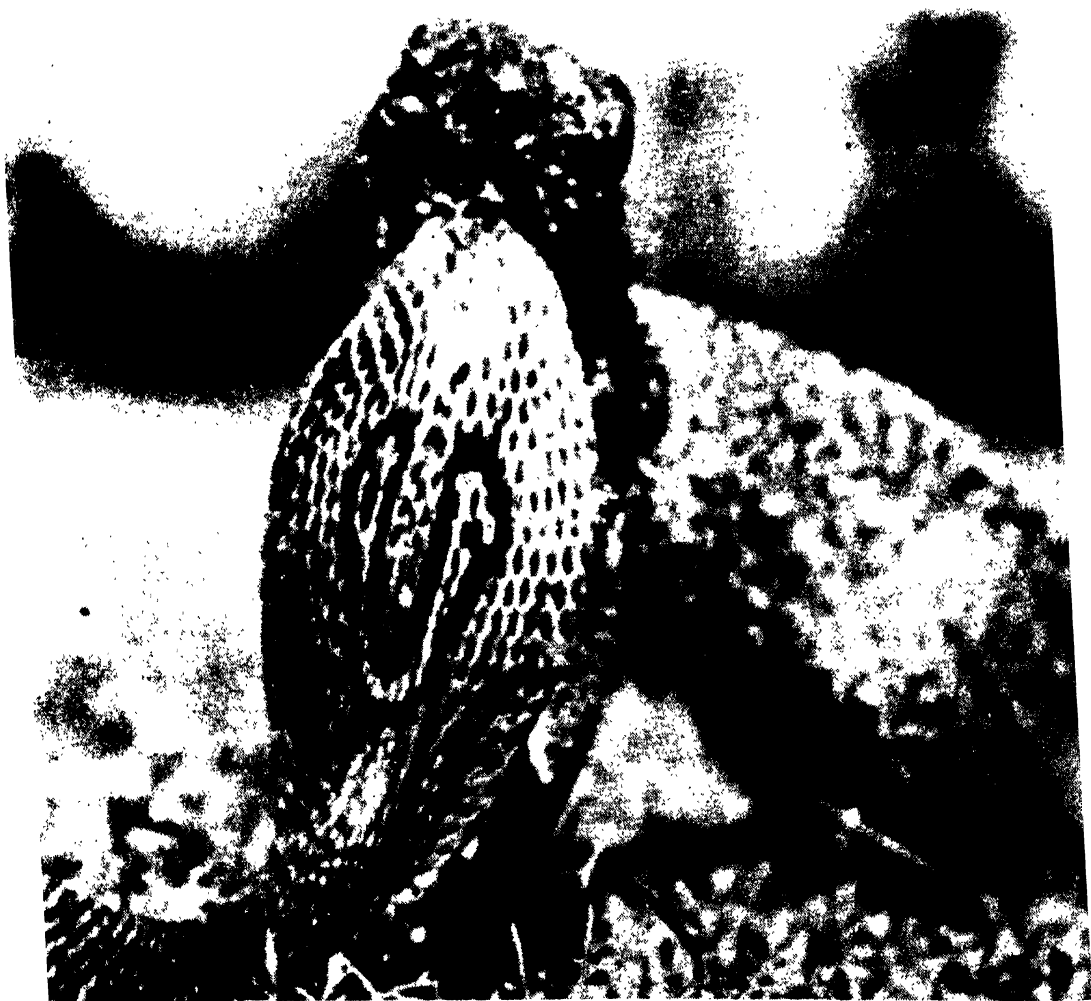
सांप और नेवले की लड़ाई - सिर्फ किंवदंती नहीं

दौर-ए-तरक्की में पत्थर भी महफ़ूज़ नहीं

कुदरती तौर पर बनने और खत्म होने का सिलसिला तो हमेशा से चलता रहता है। हवा, पानी, गर्मी-सर्दी और विभिन्न रासायनिक क्रियाओं वगैरह के कारण कुदरत में घिसाई की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है जिससे लाखों करोड़ों सालों के अंतराल में तो विशालकाय पहाड़ भी बौने बन जाते हैं। लेकिन अक्सर इंसान की दखलंदाज़ी से ये प्रक्रियाएं और भी तेज़ हो जाती हैं। जैसा कि इन चित्रों में स्पष्ट दिखाई देता है।

यहां एक जर्मन मूर्ति के दो फोटो दिए गए हैं। पहला फोटो सन् 1908 में लिया गया था जिसमें सन् 1702 में बलुआ पत्थर से बनी एक जर्मन मूर्ति दिख रही है। इस मूर्ति ने उस समय तक अपना 206 सालों का सफर बिना किसी विशेष क्षति के पूरा कर लिया था।

दूसरा चित्र भी इसी कलाकृति का है, इसे सन् 1969 में लिया गया था। जिसमें मूर्ति के नाम पर एक बेढब-सा पत्थर ही बचा है।

सन् 1908 से 1969 के बीच इस कलाकृति ने कई तेज़ाबी बरसातों में खुद को गलाया, तो कभी प्रदूषित हवा की मार सही। तरह-तरह की रासायनिक क्रियाएं और उनके कारण विभिन्न किस्म के बदलाव तो प्रकृति में भी लगातार होते ही रहते हैं – खनिजों का स्वरूप बदलने से चट्टानें तक खत्म होती जाती हैं।

दरअसल 20 वीं सदी में तरक्की की दौड़ में मशगूल इंसान ने इस कुदरती कामकाज में जमकर दखलंदाज़ी शुरू कर दी। मसलन, कारखानों की चिमनियां रोज़ बड़ी तादात में कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड और पता नहीं किन-किन गैसों से वायुमंडल को पाट रही हैं। हवा में इनकी बढ़ी हुई मौजूदगी का असर तो इंसान पर पड़ता ही है। जहां कहीं इनकी मात्रा ज़्यादा ही हो जाए, वहां तो कार्बन डाइऑक्साइड और सल्फर डाईऑक्साइड जैसी गैसें बारिश के पानी में घुलकर हल्के तेज़ाब के रूप में तक बरसने लगती हैं। खतरनाक बनती जा रही इन गैसों के असर से इंसान-तो-इंसान, पत्थर भी महफ़ूज़ नहीं है। चाहे यह जर्मन कलाकृति हो या हिंदुस्तान का ताजमहल।

चित्र 1 : जर्मन कलाकृति सन् 1908 में . . .

चित्र 2 : ..... और इकसठ सालों बाद, सन् 1969 में वही जर्मन कलाकृति.... !